१—श्रीरामानन्दवेदान्तमालायाः प्रथमं पुष्पम्

श्रीमते रामानन्दाय नमः ।

पण्डितसम्राट् स्वामिश्रीवैष्णवाचार्यवेदान्ततीर्थ
वेदान्तपीठाधीशप्रणीता

मयूखसहिता मानरत्नावली

सव्याख्यो ब्रह्मसूत्रार्थसंग्रहश्च

प्रकाशकः—स्वामीश्रीपुरुषोत्तमदासजी 'श्रीवैष्णवभूषण'
श्रीनरसिंहमन्दिर
भंडेरीपोल — अहमदाबाद—१

प्रति	श्रीरामानन्दसप्तमी	मूल्यम्
१०००	ता. २९-१-१९६२ ई०	१/५०

Scanned by CamScanner

Scanned by CamScanner

१–श्रीरामानन्दवेदान्तमालायाः प्रथमं पुष्पम्

श्रीमते रामानन्दाय नमः ।

पण्डितसम्राट् स्वामिश्रीवैष्णवाचार्यवेदान्ततीर्थ

वेदान्तपीठाधीशप्रणीता

मयूखसहिता मानरत्नावली

सव्याख्यो ब्रह्मसूत्रार्थसंग्रहश्च

प्रकाशकः-पं. स्वामीश्रीपुरुषोत्तमदासजी 'श्रीवैष्णवभूषण

श्रीनरसिंहमन्दिर

भंडेरीपोळ – अहमदाबाद–१

प्रति १०००

श्रीरामानन्दसप्तमी

ता. २९–१–१९६२ ई०

मूल्यम् १/५०

मुद्रण स्थानः– श्रीरामानन्द प्रिन्टिंगप्रेस कांकरियारोड, अहमदाबाद १

Scanned by CamScanner

श्रीसीतारामाभ्यां नमः

स्वभक्तत्रातारौ मितिविरहितौ वेदविदितौ
प्रणम्यौ देवानां प्रणतसुखदौ दिव्यविभवौ ।
गुणाब्धी निर्दोषौ पवनसुतसौमित्रिसहितौ
प्रभू सीतारामौ हृदि दृगभिरामौ विलसताम् ॥

(स्वामी वैष्णवाचार्य)

स्वभक्तरक्षक अपरिच्छिन्न वेदविदित देववन्द्य प्रणतजन सुखदायक दिव्यवैभववाले दोषरहित गुणोंके समुद्र श्रीहनुमानजी और श्रीलक्ष्मण जी केसाथ नयनाभिराम प्रभु श्रीसीतारामजी मेरे हृदयमें विराजमान हों ।

श्रीरामो विजयतेतराम् ।

प्रस्तावना

आज आचार्यसम्राट् आनन्दभाष्यकार भगवान् श्रीरामानन्दाचार्य जी यतिराजकी जयन्ती है । इसे श्रीरामानन्दसप्तमी भी कहते हैं । समस्त भारतवर्ष आज आचार्यजन्मोत्सवके आनन्दमहासागरमें निमग्न है । भगवान् श्रीरामानन्दाचार्य अद्वितीय भारतनिर्माता हैं । वे वेदवेद्य परिपूर्ण ब्रह्म भगवान् श्रीरामके अवतार हैं । यदि भगवान् श्रीराम अवतार लेकर आचार्यसार्वभौम श्रीरामानन्दाचार्यरूपसे भगवती वसुन्धराको अलंकृत न करते तो भारतीय संस्कृतिका आज नाममात्र ही अवशिष्ट रह जाता । आजसे ६६२ वर्ष पूर्व माघ कृष्ण ७ (गुजरातीहिसाबसे पूष कृष्ण ७) को तीर्थराज प्रयागमें परमपुण्यवान् विप्रवर्य श्रीपुण्यसदन शर्मा तथा शीलनिधान श्रीसुशीलाजीके पुत्ररूपमें जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य जी का जन्म हुआ था । उनका जीवनचरित्र श्रीरामानन्ददिग्विजय श्रीरामानन्दाचार्य श्रीरामानन्दायन आचार्यलीलामृत तथा श्रीरामानन्दनाटक इत्यादि लगभग द्वादश महाकवियोंकी गद्यपद्यमय दिव्यबाणियोंको अलंकृत कर रहा है । मैंने भी निजसंशोधित भक्तमाल तथा श्रीमङ्गलशिक्षाम्बुधि की भूमिकाओंमें अत्यन्त संक्षिप्तरूपसे लिखा है ।

Scanned by CamScanner

जगत्प्रसिद्ध है कि आनन्दभाष्यकार भगवान् श्रीरामानन्दाचार्य जी परम वैदिक श्रीसम्प्रदायके प्रधानाचार्य थे। आचार्यचरणोंद्वारा श्रीसम्प्रदायका विशाल प्रचार हुआ है। इसलिये श्रीसम्प्रदायको द्वितीय नाम श्रीरामानन्दसम्प्रदाय भी है। उक्त श्रीसम्प्रदायके परममूल साकेताधिनायक जगत्पिता सर्वेश्वर श्रीरामजी तथा जगज्जननी सर्वेश्वरी भगवती श्रीजानकी जी हैं। वेदान्तदर्शनकार (ब्रह्मसूत्रकार) भगवान् वादरायण व्यास तथा अतिविशाल श्री बोधायनवृत्तिकार उपवर्षनामक भगवान् श्रीपुरुषोत्तमाचार्य जी बोधायन इसी श्रीसम्प्रदाय के अलङ्कार हैं। जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यजीने अपनी आचार्यपरम्परा श्रीभगवद्गीताके स्वनिर्मित आनन्दभाष्यके मङ्गलाचरणमें स्वयं लिखी है—

श्रीरामं जनकात्मजामनिलजं वेधोवशिष्ठावृषी
योगीशं च पराशरं श्रुतिविदं व्यासं जिताक्षं शुकम्।
श्रीमन्तं पुरुषोत्तमं गुणनिधिं गङ्गाधराद्यान् यतीन्
श्रीमद्राघवदेशिकं च वरदं स्वाचार्यवर्यं श्रये॥

इस श्लोकके गङ्गाधराद्यान् शब्दसे सदानंदाचार्य रामेश्वरानन्दाचार्य आदि आचार्योंको समझना चाहिये। तथा च उक्त श्लोकका अर्थ हुआ कि—श्रीरामजीजी श्रीजानकीजी श्रीहनुमान्जी ब्रह्माजी वशिष्ठजी पराशरजी वेदविद् व्यासजी जितेन्द्रिय शुकदेवजी बोधायनवृत्तिकार श्रीपुरुषोत्तमाचार्य बोधायन' गङ्गाधराचार्य सदानन्द रामेश्वरानन्द द्वारानन्द देवानन्द श्यामानन्द श्रुतानन्द चिदानन्द पूर्णानन्द श्रियानन्द हर्यानन्द इत्यादि यतियों और अपने वरदायक आचार्यवर्य श्रीराघवानन्दजी का मैं आश्रय लेता हूँ॥

भगवान् श्रीरामानन्दाचार्यद्वारा लिखित यह गुरुपरम्परा अन्यपूर्वाचार्योंके कथनानुसार ही है। जगद्गुरु श्रीगङ्गाधराचार्यने साधनदीपिकामें कहा है कि—

सीतानाथसमारम्भां वादरायणमध्यमाम्।
बोधायनाख्यगुर्वन्तां वन्दे गुरुपरम्पराम्॥

आनन्दभाष्यकार भगवान् श्रीरामानन्दाचार्य के प्रधान शिष्य जगद्गुरु श्रीअनन्तानंदाचार्यजी ने भी सिद्धान्तदीपक में कहा है कि-

सीतानाथसमारम्भां श्रीबोधायनमध्यमाम्
अस्मदाचार्यपर्यन्तां वन्दे गुरुपरम्पराम्॥

भगवान् श्रीरामानन्दाचार्य जी के अनुयायी जगद्गुरु श्रीअग्रदेवाचार्य जी जगद्गुरु श्रीटीलाचार्यजी जगद्गुरु श्रीखोजी जी तथा जगद्गुरु श्रीमङ्गलाचार्य जी इत्यादि आचार्यों ने भी उक्त परम्पराको स्वीकार किया है। वाल्मीकिरामायण के टीकाकार पं० श्रीशिवसहाय जी ने भी स्वरचित शिरोमणिटीकाके मङ्गलाचरणमें कहा है कि—

सीतारामसमारम्भां शुकाचार्यादिमध्यमाम्।
अस्मदाचार्यपर्यन्तां वन्दे गुरुपरम्पराम्॥

श्रीरामानन्दवेदान्त

श्रीशांकरादि सम्प्रदायोंके श्रीशांकरवेदान्तादिके सदृश श्रीरामानन्दसम्प्रदायनामक श्रीसम्प्रदायका श्रीरामानन्दवेदान्त है। जिसमें जगद्गुरु श्रीपुरुषोत्तमाचार्य बोधायनकृत बोधायनवृत्ति तथा प्रस्थानत्रयके जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यकृत तीनों आनन्दभाष्य आदि साम्प्रदायिक ग्रन्थरत्नोंका समावेश होता है। श्रीरामानन्दवेदान्तको प्रक्रिया

Scanned by CamScanner

के प्रकाशक पूर्वाचार्यकृत साधनदीपिका श्रौतसिद्धान्तविन्दु चिदात्म-प्रबोध श्रीरामानन्दकृत वेदान्तसार (श्रीवैष्णवमताब्जभास्कर प्रथम प्रश्नोत्तर) वेदान्तचिन्तामणि श्रीरामतत्त्वभास्कर आदि विशाल अर्थगर्भित कुछ संस्कृत लघुनिबन्ध भी है । हिन्दीमें भी त्रिरत्नी विशिष्टाद्वैतसिद्धान्तसार आदि निबन्ध हैं । आजसे लगभग २० वर्ष पूर्व मैं ने श्रीरामानन्दवेदान्तके जिज्ञासुओंके अनुरोधसे 'प्रमेयपरिशोधिनी' नामका प्रमेयप्रक्रियाका प्रकाशक न बहुत बड़ा न बहुत छोटा निबन्ध लिखा है । जिसमें परमतनिरासपूर्वक स्वमतका प्रतिपादन बड़ा सुन्दर है । वह साम्प्रदायिक महानुभावोंकी परमप्रीतिका सम्पादक हुआ है ।

मानरत्नावली

ऊपर कहे हुए निबन्धमें प्रमेयप्रक्रियामात्रका प्रतिपादन है । प्रमाणप्रक्रियाका प्रतिपादन नहीं है । इसलिये श्रीरामानन्दवेदान्तानुकूल प्रमाणप्रक्रियाका पूर्णतया प्रतिपादन करनेवाला यह मानरत्नावलीनामक निबन्ध मैं ने बनाया है । आनन्दभाष्यों में परमतनिरासके अवसर पर प्रत्यक्ष अनुमान तथा शब्द इन तीन प्रमाणोंका उल्लेख किया गया है । उन्हीं तीनों प्रमाणोंका विशद निरूपण मानरत्नावलीमें किया गया है । अन्य प्रमाणों का उक्ततीनों प्रमाणों में ही अन्तर्भाव किया गया है । राष्ट्रभाषा हिन्दीके जाननेवालों की सुगमताके लिये मयूखनामक टीकाका भी निर्माण किया गया है । जिसमें जाति और निग्रहस्थानके विशद निरूपणके साथ अन्य विषयोंका भी समीचीन और सुगम विवेचन किया गया है । अनेकों स्थानों पर आनन्दभाष्यकी सम्मतियां भी प्रदर्शित की गई हैं । साथमें स्वर-

चित सटीक ब्रह्मसूत्रार्थसंग्रह नामका निबन्ध भी प्रकाशित कर रहा हूँ ।

सब कुछ होने पर भी मानवस्वभाववश भूल होना सम्भवित है । यद्यपि मैंने अन्तमें शुद्धिपत्र लगा दिया है । तो भी मैं मानता हूँ कि त्रुटियाँ रह गई होंगी । सज्जन पाठकों और निरीक्षकोंसे प्रार्थना है कि कृपया भूलोंको सुधार लें और मुझे सूचित करें । मैं कृतज्ञ होऊँगा और अग्रिम संस्करणमें अवश्य सुधार लूँगा ।

भण्डेरीपोल (अहमदाबाद-१) के श्री नरसिंहजी के मन्दिर के महान्त पं० श्री पुरुषोत्तमदासजी श्रीवैष्णवभूषण श्रीटीलाद्वारपीठाधीश जगद्गुरु श्रीमङ्गलाचार्य जी महाराज की परम्पराके उज्वल रत्न हैं । विद्वान् कथावाचक तथा भगवत् भागवत सेवा परायण हैं । कई ग्रन्थोंका उन्होंने प्रकाशन किया तथा कराया है । वे ही इस मानरत्नावली को प्रकाशित करके श्रीरामानन्दसाम्प्रदायिक साहित्यलक्ष्मी क अभिवृद्धि कर रहे हैं । तदर्थ सहर्ष धन्यवादपूर्वक अनन्त ब्रह्माण्डनायक श्रीसीताराम जी से प्रार्थना करता हूँ कि वे उनके घर्मे स्वास्थ्य यश और आयुकी वृद्धि करें ।

अन्तमें सन्तों महान्तों विद्वानों और छात्रों से प्रार्थना कर लेखको समाप्त करता हूँ कि वे मेरी इससेवा को अङ्गीकार करें और इसके पठन पाठन द्वारा श्रीरामानन्दवेदान्तके गौरवको बढ़ावें ।

श्रीरामानन्दजयन्ती
ता० २९-१- १९६२ ई०

निवेदक--पंडितसम्राट्
स्वामी श्री वैष्णवाचार्य वेदान्तपीठाधीश

त्रणदेवड़ी-राममन्दिर
शारंगपुर दरवाजा बाहर अहमदाबाद-२

Scanned by CamScanner

विषयानुक्रमणिका

क्रम	विषय	पृष्ठ	श्लोक.
	प्रत्यक्षप्रमाणपरिच्छेद		
१	मङ्गलाचरण	१	१
२	प्रमाण	२	७
३	प्रमा	३	८
४	लक्षण (मयूखमें)	"	१०
५	अव्याप्ति	"	११
६	अतिव्याप्ति	"	१२
७	असम्भव	४	१३
८	संशय	५	१५
९	अन्यथाज्ञान	"	१७
१०	विपरीतज्ञान	"	१८
११	प्रमाके भेद	"	१९
१२	करण	६	२०
१३	प्रमाणके भेद	"	२२
१४	प्रत्यक्षप्रमाण	"	२३
१५	प्रत्यक्षप्रमा	७	२४
१६	इन्द्रिय और विषयके सन्निकर्ष	"	२६
१७	प्रत्यक्षज्ञानके भेद	८	२८
१८	निर्विकल्पकप्रत्यक्ष	"	"
१९	सविकल्पकप्रत्यक्ष	"	२९
२०	अर्वाचीनप्रत्यक्षके भेद	९	३१
२१	इन्द्रियापेक्ष्यप्रत्यक्षके भेद	"	३२
२२	इन्द्रियानपेक्ष्यप्रत्यक्षके भेद	"	३३
२३	अनर्वाचीनप्रत्यक्ष	"	३४
२४	स्मृति और उसका अन्तर्भाव	१०	३५
२५	संस्कारके उद्बोधक	११	३८
२६	प्रत्यभिज्ञाका अन्तर्भाव	१२	४२
२७	अनुपलब्धि का अन्तर्भाव	"	४२
२८	प्रतिभा संशय और ऊहका अन्तर्भाव	"	४४
२९	विज्ञानवादी बौद्धोंकी आत्मख्याति	"	४५
३०	शून्यवादी बौद्धोंकी असत्ख्याति	१७	६०
३१	मीमांसकोंकी अख्याति	१८	६५
३२	नैय्यायिकोंकी अन्यथाख्याति	२०	७१
३३	अद्वैतवादियोंकी अनिर्वचनीयख्याति	२३	७८
३४	विशिष्टाद्वैतवादियों की सत्ख्याति	२६	८८
३५	दशमस्त्वमसि वाक्य प्रत्यक्षजनक नहीं है।	३४	११८
३६	'तत्त्वमसि' वाक्य प्रत्यक्षजनक नहीं है।	३५	१२२
	अनुमानप्रमाणपरिच्छेद		
३७	अनुमान	३६	१
३८	अनुमिति	"	"

Scanned by CamScanner

३९	परामर्श	३७	३
४०	पक्षधर्मता	,,	५
४१	व्याप्ति	,,	६
४२	व्याप्तिके भेद	३८	७
४३	व्याप्तिग्रह	,,	९
४४	उपाधि और उसके भेद	३९	१०
४५	सद्धेतुके दोरूप तथा पाँचरूप	४०	१५
४६	पक्ष सपक्ष तथा विपक्ष	४१	१७
४७	सद्धेतुके भेद	४२	२२
४८	केवलव्यतिरेकी	४३	२६
४९	अनुमानके भेद	४७	३४
५०	स्वार्थानुमान	,,	३५
५१	अनुमानसामग्री	४८	३९
५२	न्यायवाक्य	,,	४०
५३	प्रतिज्ञा	४९	,,
५४	हेतु	,,	४१
५५	उदाहरण और उसके भेद	,,	४२
५६	उपनय और उसके भेद	,,	४४
५७	निगमन और उसके भेद	५०	४६
५८	अवयवकथनस्वीकार	,,	४८
५९	अनुमितिकेउत्पादकसेद्धतु	५१	५०
६०	हेत्वाभास और उसके भेद	५१	५१

६१	असिद्ध	५१	५२
६२	आश्रयासिद्ध	,,	५३
६३	स्वरूपासिद्ध और उसके भेद	५२	५५
६४	शुद्धासिद्ध	,,	५६
६५	भागासिद्ध	५३	५७
६६	विशेषणासिद्ध	,,	५८
६७	विशेष्यासिद्ध	,,	५९
६८	व्याप्यत्वासिद्ध	५४	६०
६९	विरुद्ध	५५	६६
७०	अनैकान्तिक और उसके भेद	५६	६८
७१	बाधित अथवा कालात्ययापदिष्ट	५८	७२
७२	सत्प्रतिपक्ष अथवा प्रकरणसम	,,	७४
७३	उपमान	५९	७६
७४	अर्थापत्ति	६०	८१
७५	सम्भव	६१	८५
७६	एतिह्य	६१	८६
७५	तर्क और उसके प्रकार	६२	८७
७८	कथा	६३	८९
७९	कथाके भेद वाद जल्प और वितण्डा	,,	,,
८०	वाद और उसके अङ्ग	,,	९०
८१	जल्प	६४	९३

Scanned by CamScanner

८२	वितण्डा	„	„
८३	छल	„	९५
८४	जाति और उसके भेद	६५	९६
८५	निग्रहस्थान और उसके भेद	७४	९९
८६	अनुमानका प्रामाण्य	८०	१०१

शब्दप्रमाणपरिच्छेद

८७	शाब्दीप्रमा	८२	१
८८	शब्दप्रमाण	„	„
८९	शब्दका अपौरुषेयत्व और नित्यत्व	„	३
९०	वेदमें बाधकप्रत्ययका अभाव	८७	८
९१	शब्दका पृथक् प्रमाणत्व	८९	१३
९२	सिद्धवाक्यका प्रामाण्य	„	१५
९३	वेद और वेदका विभाग	९२	१९
९४	पूर्वोत्तमरमीमांसाओं का एकशास्त्रत्व	९३	२१
९५	विधि और विधिके भेद	९५	२५
९६	मन्त्र	९८	३२
९७	अर्थवाद और उसके भेद	„	३३
९८	वेदके अङ्ग	९९	३८
९९	वेदका प्रामाण्य	१००	४२
१००	वाक्यविभाग	१०१	४७
१०१	वाक्यका लक्षण	१०२	४९

१०२	पद तथा पदका विभाग	„	४९
१०३	शब्दबोधके हेतु	१०३	५४
१०४	प्रमाणिक शास्त्र	१०६	६२
१०५	शब्दवृत्ति	११४	७५
१०६	शक्ति	„	७६
१०७	लक्षणा और उसके भेद	११६	८३
१०८	गौणीवृत्ति	११७	८७
१०९	शब्दकी प्रवृति	„	८८
११०	ब्रह्मसूत्रार्थसंग्रह	१२१	
११२	शुद्धिपत्रम्	१२८	

श्रीरामानन्दमतम्

अद्वैतं हि विशिष्टयोरभिमतं चाकार्यकार्येशयो-
रद्वैतं तु मतं न जीवपरयोर्जीवाश्च भिन्ना मिथः।
सद्विश्वं च परेश्वरोरघुपतिभक्त्यैव मुक्तिस्तथा
रामानन्दजगद्गुरोरभिहितं चैतन्मतं वैदिकम् ॥

"कार्य तथा कारणरूप चिदचिद्विशिष्ट ब्रह्मका अद्वैत (अभेद) है। (यही विशिष्टाद्वैत है।) जीव और परमात्माका अभेद नहीं है। सभी जीव परस्पर भिन्न हैं। विश्व सत्य है। परात्पर ब्रह्म भगवान् श्री राम हैं। तथा भक्ति से ही मुक्ति होती है" आनन्दभाष्यकारजगद्गुरु श्री रामानन्दाचार्य जी आचार्यसम्राट्का यह वैदिक मत कहा गया है।

Scanned by CamScanner

मानरत्नावली पृष्ठ १११ के आनन्दभाष्यका अर्थ—

इस प्रकार ईश्वरको केवल अधिष्ठाता माननेवाले पाशुपतनामक शैवमतका श्रुतिविरुद्ध होनेसे असामञ्जस्य कहा गया उसके खण्डनसे पञ्चरात्रप्रतिपादित वैष्णवमत बुद्धिमें उपस्थित होता है। अतः उसके विषयमें विचार किया जाता है। उसमें भागवतमतका सामञ्जस्य है कि नहीं? इत्यादि विप्रतिपत्ति है। तदर्थ वैष्णवमतप्रतिपादक पञ्चरात्रतन्त्रका सर्वथा अप्रामाण्य है? कि आंशिक अप्रामाण्य है? अथवा सम्पूर्णतया प्रामाण्य है? तदर्थ कुछ पञ्चरात्रवचनों का जीवोत्पत्तिमें तात्पर्य है कि नहीं? यह संशय है।

यदि पञ्चरात्रके कुछ वचनोंका जीवोत्पत्तिमें तात्पर्य होगा तो असम्भवित अर्थके कथन करनेसे पञ्चरात्रका अनिवार्य आंशिक अप्रामाण्य होगा। तदर्थ वैष्णवमतका भी असामञ्जस्य होगा ही यह हृदयमें रखकर पूर्वपक्ष करते हैं कि—"परब्रह्मरूप परमकारणसे संकर्षणनामक जीव उत्पन्न होता है। संकर्षणसे प्रद्युम्नसंज्ञक मन उत्पन्न होता है। उससे अनिरुद्धसंज्ञक अहंकार उत्पन्न होता है" (परमसंहिता) इत्यादि पञ्चरात्रके ही प्रक्रियाप्रतिपादक वचनोंका जीवोत्पत्तिमें तात्पर्य है।

इसपर सिद्धान्तपक्षरूपसे कहते हैं—"उत्पत्त्यसम्भवादिति' पञ्चरात्रके इन वचनोंका जीवोत्पत्तिमें तात्पर्य नहीं है। क्योंकि वह असम्भवित है। श्रुतियोंमें जीवोत्पत्ति उपलब्ध नहीं होती है। प्रत्युत श्रुतियाँ जीवके अनादित्व और नित्यत्वको कहती हैं। 'जीव न उत्पन्न होता है न मरता है' 'ईश्वर और जीव दोनों अजन्मा हैं। ईश्वर सर्वज्ञ और समर्थ है किन्तु जीव अल्पज्ञ और असमर्थ है।' 'नित्योंका नित्य और चेतनोंका चेतन है' 'अजन्मा नित्य शाश्वत और पुराण है यह मारा नहीं जाता है' इत्यादि। इसलिये इन पञ्चरात्र वचनोंका जीवोत्पत्तिमें तात्पर्य नहीं है। अतः असम्भवितार्थवाचकता न होनेसे पञ्चरात्रका आंशिक अप्रामाण्य भी नहीं है पञ्चरात्रमूलक वैष्णवमतका असामञ्जस्य भी नहीं है।

परम्पराचार्यमङ्गलम्

सिन्धवे सद्गुणानां च ब्रह्मणे दीनबन्धवे।
सच्चरित्रेण युक्ताय श्रीरामायास्तु मङ्गलम् ॥ १ ॥
जनन्यै जगतश्चास्य प्रियायै जगदीशितुः।
जगद्रक्षाविधायिन्यै श्रीसीतायै च मङ्गलम् ॥ २ ॥
तारकाय हि लोकानां रामतारकदानतः।
आञ्जनेयाय रामस्य भक्तिदायास्तु मङ्गलम् ॥ ३ ॥
मन्त्रदाय वशिष्ठस्य विशिष्टाद्वैतवादिने।
ब्रह्माराधनसक्ताय ब्रह्मणे चास्तु मङ्गलम् ॥ ४ ॥
दानिने राममन्त्रस्य विशिष्टब्रह्मवादिने।
महर्षये वशिष्ठाय ब्रह्मपुत्राय मङ्गलम् ॥ ५ ॥
शिष्याय श्रीवशिष्ठस्य विशिष्टाद्वैतवादिनः।
पराशराभिधानाय मुनिवर्याय मङ्गलम् ॥ ६ ॥
शुकस्य गुरवे श्रीमद्राममन्त्रप्रदायिने।
ब्रह्मसूत्रादिकर्त्रे च वेदव्यासाय मङ्गलम् ॥ ७ ॥
बोधायनमहर्षेश्च गुरवे ब्रह्मवादिने।
श्रीमते शुकदेवाय व्यासपुत्राय मङ्गलम् ॥ ८ ॥
श्रीपुरुषोत्तमार्याय बोधायनमहर्षये।
श्रीशुकदेवशिष्याय वृत्तिकाराय मङ्गलम् ॥ ९ ॥
श्रीबोधायनशिष्याय भक्तितत्त्वोपदेशिने।
श्रीमद्गङ्गाधराख्यायाचार्यवर्याय मङ्गलम् ॥ १० ॥
बोधायनप्रशिष्याय सत्प्रपत्तिप्रबोधिने।
गङ्गाधरार्यशिष्याय सदानन्दाय मङ्गलम् ॥ ११ ॥
परात्परतरत्वस्य श्रीरामस्य निवेदिने।
श्रीमद्रामेश्वरानन्दाचार्यवर्याय मङ्गलम् ॥ १२ ॥

Scanned by CamScanner

ब्रह्मणः परिणामस्य विमर्शे लब्धकीर्त्तये ।
सिद्धविद्वद्वरेण्याय द्वारानन्दाय मङ्गलम् ॥ १३ ॥
राघवार्चनशीलाय राघवब्रह्मवादिने ।
राघवंवन्दिने श्रीमद्देवानन्दाय मङ्गलम् ॥ १४ ॥
श्यामस्य राममेघस्य चातकाय तपस्विने ।
देवानन्दार्यशिष्याय श्यामानन्दाय मङ्गलम् ॥ १५ ॥
विदितश्रौततत्त्वाय श्रौतसिद्धान्तवादिने ।
श्रौताचाररतायश्रीश्रुतानन्दाय मङ्गलम् ॥ १६ ॥
सच्चिदानन्दरामस्य वेदिने चित्प्रबोधिने ।
श्रुतानन्दार्यशिष्याय चिदानन्दाय मङ्गलम् ॥ १७ ॥
रामस्य परतत्त्वस्य विनिर्णेत्रे च धीमते ।
चिदानन्दार्यशिष्याय पूर्णानन्दाय मङ्गलम् ॥ १८ ॥
श्रियः श्रियं प्रपन्नाय बुधेन्द्राय सुबुद्धये ।
पूर्णानन्दार्यशिष्याय श्रियानन्दाय मङ्गलम् ॥ १९ ॥
श्रीमद्गीताजयन्त्यां हि जन्मिने जन्मितारिणे ।
श्रियानन्दार्यशिष्याय हर्यानन्दाय मङ्गलम् ॥ २० ॥
सिद्धवन्धयतीन्द्राय राघवेन्द्ररताय च ।
श्रीयुतराघवानन्दाचार्यवर्याय मङ्गलम् ॥ २१ ॥
आनन्दभाष्यकारायाचार्याणां चक्रवर्तिने ।
रामरूपयतीन्द्राय रामानन्दाय मङ्गलम् ॥ २२ ॥
रामादारभ्य ये सन्ति रामानन्दार्यमध्यमाः ।
अस्मादाचार्यपर्यन्ता आर्यास्तेभ्योऽस्तु मङ्गलम् ॥ २३ ॥
वैष्णवभाष्यकार श्रीवैष्णवाचार्यनिर्मितम् ।
मङ्गलं भवतादेतद् भव्यमङ्गलकारकम् ॥ २४ ॥

Scanned by CamScanner

पण्डितसम्राट् स्वामीश्रीवैष्णवाचार्य वेदान्तपीठाधीश
अणदेवड़ी राममन्दिर
सारंगपुर बाहर—अहमदाबाद-२

महन्त श्रीपुरुषोत्तमदासजी गुरु श्रीसेवादासजी महाराज
स्थान—शास्तापुर

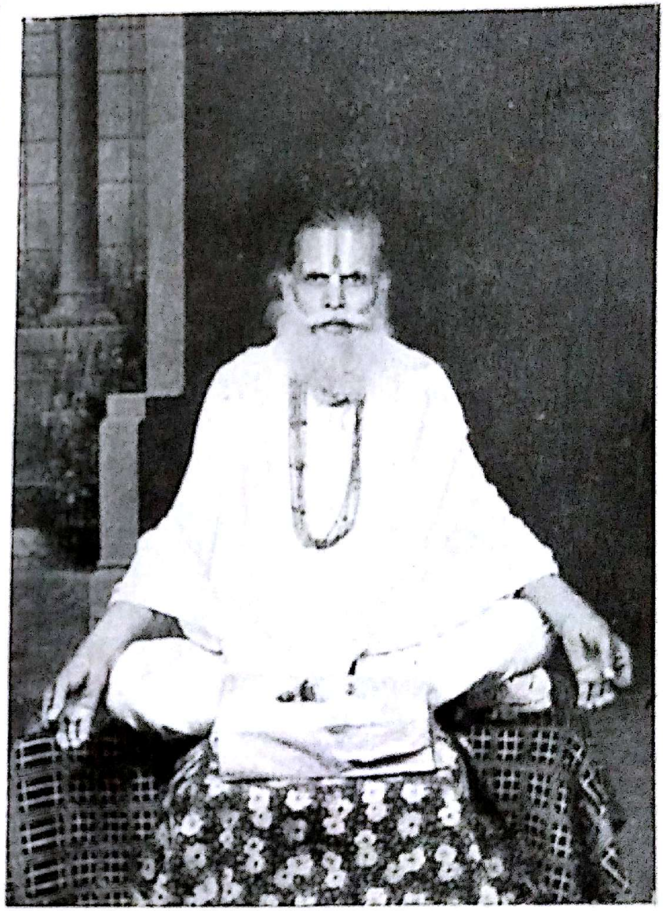

श्री नरसिंहजीका मन्दिर-भण्डेरी पोल
कालुपुर-अहमदाबाद.

श्रीसीतारामाभ्यां नमः ।

आनन्दभाष्यकार श्रीरामानन्दाचार्याय नमः ।

श्रीटीलाचार्याय नमः । श्रीमङ्गलाचार्याय नमः ।

पण्डितसम्राट् स्वामिश्रीवैष्णवाचार्य

वेदान्ततीर्थविरचिता

मानरत्नावली

मङ्गलाचरणम्

दयाब्धिर्दीनबन्धुश्च दिव्यदेहो गुणाकरः ।
वेदान्तगोचरं ब्रह्म रामो भवतु मे गतिः ॥ १ ॥
सूत्रवृत्तिविधातारौ व्यासबोधायनौ तथा ।
आनन्दभाष्यकर्त्तारं रामानन्दं नमाम्यहम् ॥ २ ॥

मयूखः

नत्वा गुरुं च रामं च रामानन्दं यतीश्वरम् ।
मानरत्नावलीव्याख्यां मयूखं विदधाम्यहम् ॥ १ ॥

दयासिन्धु दीनबन्धु दिव्यदेहवाले गुणोंके आकर तथा वेदान्तगोचरब्रह्मस्वरूप भगवान् श्रीराम मेरे रक्षक हों ॥ १ ॥

सूत्रकार भगवान् व्यास बोधायनवृत्तिकार भगवान् श्रीपुरुषोत्तमाचार्य बोधायन तथा आनन्दभाष्यकार भगवान् श्रीरामानन्दाचार्यजी को मैं नमस्कार करता हूँ ॥ २ ॥

द्वारपीठेश्वरं नत्वा टीलाचार्यं व्रतीश्वरम् ।
नमामि मङ्गलाचार्यं पीठाधीशं मुनीश्वरम् ॥३॥
श्रीमद्रामसमारम्भां रामानन्दार्यमध्यमाम् ।
अस्मदाचार्यपर्यन्तां वन्दे गुरुपरम्पराम् ॥४॥
गुरुदेवं नमस्कृत्य मानानामवबुद्धये ।
मानरत्नावलीं कुर्वे विदुषां मानसाधिनीम् ॥५॥
तत्त्वज्ञानं च मोक्षस्य साधनं श्रुतिसम्मतम् ।
प्रमाणमन्तरा नैव तत्त्वज्ञानं हि सिध्यति ॥६॥
निरूप्यते ततश्चात्र प्रमाणं हि यथाविधि ।
प्रमायाः करणं यद्धि तत् प्रमाणं मतं बुधैः ॥७॥

श्रीटीलाद्वारपीठसंस्थापक जगद्गुरु श्रीटीलाचार्यजी व्रतिराज तथा श्रीटीलाद्वारपीठाधीश जगद्गुरु श्रीमङ्गलाचार्यजी महामुनीन्द्र को मैं नमस्कार करता हूँ ॥ ३ ॥

भगवान् श्रीरामजीसे प्रारम्भ हुई मध्यमें आनन्दभाष्यकार जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य यतिराजसे विशिष्ट अपने गुरुदेव पर्यन्तकी गुरु परम्पराको मैं वन्दन करता हूँ ॥ ४ ॥

श्रीगुरुदेवको नमस्कार करके प्रमाणोंके ज्ञानके लिये विद्वानोंके मानको सिद्धकरनेवाली मानरत्नावलीको मैं बनाता हूँ ॥ ५ ॥

'तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति' इत्यादि श्रुतियोंमें तत्त्वज्ञानको मोक्षका साधन माना गया है । प्रमाणके विना तत्त्वज्ञान सिद्ध नहीं होता है । ॥ ६ ॥

इसलिये यहाँ पर यथाविधि प्रमाणका निरूपण किया जाता

प्रत्यक्षादेः प्रमायाश्च करणमिन्द्रियादिकम् ।
अबाध्यव्यवहारस्यानुगुणा हि मतिः प्रमा ॥८॥
रौप्ये रौप्यमिदं चेयं मतिः प्रमा बुधैर्मता ।
अदुष्टं लक्षणं चैतदव्याप्त्यादेरभावतः ॥९॥
त्रिधा हि लक्षणे दोषा अव्याप्त्यादिकभेदतः ॥१०॥
अव्याप्तिश्चैकदेशे हि लक्षणासत्तया मता ।
अव्याप्तं श्वेतधेनौ गोर्नीलरूपं हि लक्षणम् ॥११॥
अतिव्याप्तिरलक्ष्येऽपि लक्षणत्तया मता ।

है । विद्वानोंने प्रमाके करण को प्रमाण माना है ॥ ७ ॥

प्रत्यक्षादि प्रमाके करण इन्द्रियादि हैं । अबाधित व्यवहारके जनक ज्ञानको प्रमा कहते हैं ॥ ८ ॥

चाँदीमें 'यह चाँदी है' इस प्रकारके ज्ञानको विद्वानोंने प्रमा माना है । "अबाध्यव्यवहारानुगुणज्ञानत्वम्" यह प्रमाका लक्षण है । अव्याप्ति आदि लक्षणदोषोंके न होनेसे प्रमाका यह लक्षण दोषरहित लक्षण है ॥ ९ ॥

लक्ष्यके असाधारणधर्मको ही लक्षण कहते हैं । अव्याप्ति अतिव्याप्ति तथा असम्भव भेदसे लक्षणके तीन दोष होते हैं ॥ १० ॥

लक्ष्यके एक देशमें लक्षण के न होनेसे लक्षणमें अव्याप्तिनामक दोष होता है । जैसे यदि कहा जाय कि 'नीलरूप' गायका लक्षण है । तो लक्ष्यरूप गायोंके एकदेश श्वेतगायमें न रहनेसे नीलरूप लक्षण अव्याप्त (अव्याप्तिदोषवाला) कहा जाता है ॥ ११ ॥

लक्षण यदि समस्त लक्ष्योंमें रहकर अलक्ष्यमें भी रहे तो उसमें

Scanned by CamScanner

गोर्लक्षणमतिव्याप्तं शृङ्गवत्त्वमजादिषु ॥१२॥
अवृत्तौ लक्ष्यमात्रेऽथ लक्षणासम्भवो मतः ।
एकशफस्त्वसम्भव्यो धेनोश्च लक्षणे सति ॥१३॥
अदुष्टे लक्षणे चैतद्दोषत्रयविहीनता ।
गोर्लक्षणमदुष्टं हि सास्नावत्त्वं मतं बुधैः ॥१४॥
व्यावृत्तिः संशयादीनामबाध्येत्यादिभाषणात् ।

अतिव्याप्ति नामक दोष होता है । यदि कहें कि गायका लक्षण 'शृङ्ग' है तो अतिव्याप्ति दोष होताहै । क्योंकि शृङ्ग यद्यपि लाल पीली काली श्वेत कबरी इत्यादि सभी गायोंमें है इसलिये अव्याप्ति दोष नहीं है। परन्तु शृङ्ग गायसे अतिरिक्त बकरी मृग और भैंस इत्यादि में भी रहता है । इसलिए वह अतिव्याप्त (अतिव्याप्तिदोषवाला) कहा जाता है ॥ १२ ॥

किसी भी लक्ष्यमें यदि लक्षण न रहे तो उसमें असम्भव दोष होता है । जैसे यदि कहा जाय कि गायका लक्षण 'एकखुर' है। तो उसमें असम्भव दोष होता है । क्योंकि 'एकखुर' घोड़ा खच्चर तथा गधेमें रहता है । किसी भी गायमें एकखुर नहीं होता है। गायमात्रमें 'दो खुर' होता है ॥ १३ ॥

निर्दुष्ट लक्षणमें ये तीनों दोष नहीं होते है । गायका निर्दुष्ट लक्षण 'सास्ना' (गलकम्बल) है । ॥ १४ ॥

अब प्रकृतविषयमें कहा जाता है । ज्ञान दो प्रकारका है । प्रमा और अप्रमा । प्रत्यक्षादिभेदसे प्रमारूप ज्ञान चार प्रकारका कहा जायगा । अप्रमारूप ज्ञान तीन प्रकारका है ।

विरुद्धानां हि धर्माणामेकत्रान्वयिनी मतिः ॥१५॥
संशयत्वेन सम्प्रोक्ता दर्शनज्ञानशालिभिः ।
स्थाणुर्वा पुरुषो वेति ज्ञानं हि संशयो मतः ॥१६॥
धर्मस्याथ विपर्यासोऽन्यथाज्ञानं हि कथ्यते ।
भ्रान्तानां च यथाभ्रान्ता शङ्खे पीततामतिः ॥१७॥
धर्मिणश्च विपर्यासो विपरीता मतिः स्मृता ।
यथा शुक्ताविदं रौप्यमित्याकारवती मतिः ॥१८॥
चतुर्धा हि प्रमा चाथ विद्वद्भिः परिकीर्तिता ।
प्रत्यक्षमनुमा चाथ स्मृतिः शाब्दीति भेदतः ॥१९॥

संशय अन्यथाज्ञान तथा विपरीतज्ञान । 'अबाधितव्यवहारजनकज्ञानत्व' प्रमाका लक्षण कहा गया है । उसमें 'अबाधितव्यवहार' कथन करनेसे संशय इत्यादिका वारण हो जाता है। क्योंकि संशय आदि अयथार्थज्ञानोंसे हुए व्यवहार बाधित होते हैं । विरुद्ध धर्मोंके एकत्र सम्बन्धवाली मतिको दार्शनिक लोग संशय कहते हैं । 'स्थाणुर्वा पुरुषो वा' (यह स्थाणु है अथवा पुरुष है ?) यह ज्ञान संशय माना जाता है ॥ १५ ॥ १६ ॥

धर्मके व्यतिक्रम होनेपर अन्यथाज्ञान कहा जाता है । शंखमें भ्रान्तपुरुषोंको जो पीलेपनका ज्ञान होता है। वह अन्यथाज्ञान है।१७।

धर्मीके व्यतिक्रम होनेपर विपरीतज्ञान माना जाता है । जैसे—शुक्तिमें (सीपमें) 'यह चाँदी है' इसप्रकारका ज्ञान ॥ १८ ॥

विद्वानोंने प्रमाको चार प्रकारका कहा है । प्रत्यक्ष अनुमिति स्मृति तथा शाब्दबोध ॥ १९ ॥

Scanned by CamScanner

हेतुर्व्यापारशाली हि करणत्वेन सम्मतः ।
घटात्मकस्य कार्यस्य दण्डे करणता यथा ॥२०॥
जातः करणतश्चाथ हेतुः करणजस्य च ।
व्यापारत्वेन सम्प्रोक्तो घटं प्रति यथा भ्रमी ॥२१॥
करणं साधकं वाथातिशयितं बुधसम्मतम् ।
प्रत्यक्षमनुमानं हि शब्दश्चेति त्रिभेदतः ॥२२॥
प्रमाणं त्रिविधं प्रोक्तं प्रमाणज्ञैर्विचक्षणैः ।
प्रत्यक्षायाः प्रमाया हि प्रत्यक्षं करणं मतम् ॥२३॥

पहले कहा जा चुका है कि–'प्रमाके करणको प्रमाण कहते हैं।' उस प्रमाणलक्षणमें आये हुए करणपदार्थको बतलाते हैं कि–व्यापारवाले कारणको 'करण' कहते हैं। घटरूपकार्यका करण दण्ड है ॥ २० ॥

जो करणसे उत्पन्न हुआ हो तथा करणसे उत्पन्न हुए पदार्थ का कारण हो उसे 'व्यापार' कहते हैं। जैसे–घटरूप कार्यका करण दण्ड है। उसमें रहा हुआ भ्रमी (भ्रमण) व्यापार है क्योंकि वह दण्डसे उत्पन्न होता है और दंडसे उत्पन्न हुए घटका कारण भी है ॥ २१ ॥

करणका दूसरा लक्षण कहा जाता है कि–अतिशयित साधकको 'करण' कहते हैं। जैसे घटरूपकार्यका अतिशयित साधक दंड है। इसलिये दंड घटका करण कहा जाता है। प्रमाण जानने वाले विद्वानोंने प्रत्यक्ष अनुमान तथा शब्द भेदसे प्रमाणको तीन

शब्दस्मृत्यनुमाभिन्ना प्रत्यक्षा च प्रमा मता ।
नैवावभासकं ज्ञानमविशिष्टस्य वस्तुनः ॥२४॥
आत्मा च मनसा चाथेन्द्रियेण युज्यते मनः ।
इन्द्रियं युज्यतेऽर्थेन साक्षात्कारस्तदा खलु ॥२५॥
इन्द्रियाणां मता यस्मात् प्राप्यप्रकाशकारिता ।
द्रव्यग्रहे च संयोगः सन्निकर्षः प्रकीर्तितः ॥२६॥

प्रकारका कहा है। प्रत्यक्षप्रमाका करण 'प्रत्यक्ष' माना गया है ॥ २२ ॥ २३ ॥

शाब्दबोध स्मृति और अनुमितिसे भिन्न प्रमाको 'प्रत्यक्षप्रमा' कहते हैं। कोई भी ज्ञान विशेषणरहित वस्तुका प्रकाशक नहीं है ॥ २४ ॥

प्रत्यक्षप्रमाका करण प्रत्यक्षप्रमाण है। इसलिए प्रत्यक्षप्रमा के करण होनेसे ज्ञानेन्द्रियोंको ही प्रत्यक्षप्रमाण कहते हैं। ज्ञानेन्द्रियाँ छः हैं। चक्षु घ्राण श्रोत्र रसन त्वक् और मन। अब इन्द्रियोंके विषयग्रहणप्रकारको कहते हैं कि–आत्मा मनसे युक्त होता है, मन इन्द्रियसे युक्त होता है तथा इन्द्रिय अर्थ (विषय) से युक्त होती है तब विषय का साक्षात्कार (प्रत्यक्षज्ञान) होता है। क्योंकि इन्द्रियों की प्राप्यप्रकाशकारिता मानी गई है। अर्थात विषयों से सम्बद्ध होने पर ही इन्द्रियाँ विषयों का प्रकाश करती हैं। द्रव्यसाक्षात्कारमें इन्द्रियोंका और द्रव्योंका 'संयोग, सन्निकर्ष कहा गया है। द्रव्योंमें रहे हुए रूपादि धर्मोंके साक्षात्कारमें इन्द्रियों और द्रव्यस्थ रूपादि धर्मोंका 'संयुक्ताश्रयण, सन्निकर्ष माना गया

Scanned by CamScanner

रूपादिग्रहणे सोऽथ संयुक्ताश्रयणं मतः ।
ग्रहणस्य प्रकारोऽयं सिद्धान्ते स्वीकृतः किल ॥२७॥

सविकल्पविकल्पत्वभेदात् प्रत्यक्षकं द्विधा ।
प्रत्यवमर्शशून्यं हि प्रत्यक्षं निर्विकल्पकम् ॥२८॥

यथाऽयमीदृशः कोऽपि पशुरेवं विधा मतिः ।
प्रत्यवमर्शसाहित्यं प्रत्यक्षे सविकल्पता ॥२९॥

है । अर्थात् इन्द्रियका द्रव्य के साथ संयोग सन्निकर्ष होता है। वह द्रव्य रूपादिधर्मोंका आश्रय है । ग्रहण का यह प्रकार सिद्धान्त में स्वीकार किया गया है ॥२५॥ ॥२६॥ ॥२७॥

सविकल्पक और 'निर्विकल्पक' भेदसे प्रत्यक्ष दो प्रकारका होता है । विमर्शशून्य प्रत्यक्ष को निर्विकल्पक कहते हैं । नैयायिकोंके मत में निर्विकल्पक प्रत्यक्षमें प्रकार (विशेषण) का अवभास नहीं माना गया है । किन्तु सिद्धान्तमें वह माना गया है । यह पूर्वमें ही कह दिया है कि ज्ञान निर्विशेष अर्थात विशेषणरहित वस्तुका अवभासक नहीं है । इसलिये निर्विकल्पक प्रत्यक्ष और सविकल्पक प्रत्यक्ष दोनों में विशिष्ट वस्तुका ही अवभास होता है । दोनोंमें अन्तर यह है कि वस्तुकी विशिष्टताका विमर्श (विचार) निर्विकल्पक प्रत्यक्षमें नहीं होता है किन्तु सविकल्पक प्रत्यक्षमें होता है । जैसे गाय इत्यादि के देखने पर अर्थात् प्रथम पिण्डग्रहणदशामें "यह इस प्रकार का कोई पशु है" इस प्रकारका ज्ञान होता है । इसलिये विमर्शशून्य प्रत्यक्षको निर्विकल्पक प्रत्यक्ष कहते हैं ।

प्रत्यवमर्श (विचार) सहित प्रत्यक्षको 'सविकल्पक' प्रत्यक्ष कहते

अयं चापि स एवेति प्रत्यक्षं सविकल्पकम् ।
अर्वाचीनमथानर्वाचीनं चेति विभेदतः ॥३०॥

प्रत्यक्षं द्विविधं तत्रादिमं चाथ द्विधा मतम् ।
इन्द्रियाणामपेक्ष्यं चानपेक्ष्यं चेति भेदतः ॥३१॥

तत्राद्यं त्वस्मदादीनां षड्विधं तच्च मानसम् ।
श्रावणं चाक्षुषं त्वाचं घ्राणजं रासनं तथा ॥३२॥

प्रत्यक्षं तु द्वितीयं हि विद्वद्भिर्द्विविधं मतम् ।
स्वयं सिद्धं च दिव्यं चेति भेदाद् बुधसम्मतात् ॥३३॥

आद्यं योगजं चान्त्यमीशानुग्रहजं मतम् ।
अनर्वाचीनमीशस्य मुक्तानाञ्च प्रकीर्त्तितम् ॥३४॥

हैं । जैसे द्वितीय पिण्डग्रहणकी अवस्थामें "यह भी वही है" इस प्रकार विमर्शसहित गायके आकारसे विशिष्ट वस्तुका जो प्रत्यक्ष होता है । उसे सविकल्पक प्रत्यक्ष कहते हैं ।

पुनः वह प्रत्यक्ष अर्वाचीनप्रत्यक्ष और अनर्वाचीनप्रत्यक्ष के भेदसे दो प्रकारका है ॥२८॥२९॥३०॥

अर्वाचीन प्रत्यक्षके दो भेद हैं—इन्द्रियापेक्ष्य और इन्द्रियानपेक्ष्य ॥३१॥

हमलोगोंका प्रत्यक्ष इन्द्रियापेक्ष्य है । वह मानस श्रावण चाक्षुष त्वाच तथा रासन भेदसे छ प्रकारका है ॥३२॥

इन्द्रियानपेक्ष्य प्रत्यक्षको विद्वानोंने दो प्रकारका माना है—स्वयं सिद्ध और दिव्य ॥३३॥

योगज (योगसे उत्पन्न) प्रत्यक्षको स्वयंसिद्धप्रत्यक्ष कहते हैं ।

Scanned by CamScanner

अबाध्यव्यवहारस्यानुगुणत्वात्　स्मृतेरपि ।
प्रामाण्ये स्वीकृते तस्याः प्रमाणान्तरता न हि ॥३५॥
तस्याः　संस्कारसापेक्षतया　प्रत्यक्षमूलता ।
प्रत्यक्षे च स्वमूले हि साऽन्तर्भवति यत् ततः ॥३६॥
पूर्वानुभवजाद् या हि संस्काराज्जायते मतिः ।
सा स्मृतित्वेन सम्प्रोक्ता तत्वज्ञानविशारदैः ॥३७॥

तथा ईश्वरकी कृपासे उत्पन्न हुए प्रत्यक्ष ज्ञानको दिव्यप्रत्यक्ष कहते हैं ।

ईश्वर तथा मुक्तजीवोंके प्रत्यक्षको अनर्वाचीनप्रत्यक्ष कहते हैं ॥३४॥

स्मृति

स्मृति भी अबाधितव्यवहारजनकज्ञानरूप है । अतः स्मृति का भी प्रामाण्य सिद्धान्तमें स्वीकार किया गया हैं । परन्तु स्मृतिको प्रत्यक्ष अनुमान और शब्द इन तीन प्रमाणोंसे अतिरिक्त 'प्रमाण' नहीं माना गया है ॥३५॥

स्मृति संस्कारसापेक्ष होनेसे प्रत्यक्षमूलक मानी गई है । अर्थात् प्रत्यक्ष अनुभवसे संस्कार उत्पन्न होता है । उस संस्कारसे स्मृति उत्पन्न होती है । इसलिये स्मृतिका मूल प्रत्यक्ष माना जाता है । इसलिये स्मृतिका अन्तर्भाव (समावेश) उसके मूल प्रत्यक्षमें होता है । इसलिये स्मृतिको पृथक् प्रमाणरूपसे नहीं गिनते हैं ॥३६॥

पूर्वानुभवसे उत्पन्न हुए संस्कारसे उत्पन्न मतिको तत्वज्ञानचतुरोंने 'स्मृति' कहा है ॥३७॥

स्मृतौ चोद्बुद्धसंस्कारो हेतुत्वेन प्रकीर्तितः ।
सदृशादृष्टचिन्ताद्याः　संस्कारोद्बोधका　मताः ॥३८॥
स्मर्यते बालवक्त्रं च तत्तुल्यचन्द्रदर्शनात् ।
अदृष्टात् स्मर्यते दृष्टो दिव्यः श्रीरामविग्रहः ॥३९॥
स्मर्यते चिन्तितौ सीताराघवौ भक्तवत्सलौ ।
स्मर्यते　सहचारी　हि　दृष्टे　सहचरे तथा ॥४०॥
क्वचित् कालस्य दीर्घत्वाद् व्याध्यादेरथवा किल ।
संस्कारस्य प्रमोषाद्धि स्मृत्यभावो मतो बुधैः　॥४१॥

संस्कारके उद्बोधक

यह अच्छी प्रकारसे ध्यानमें रखनेयोग्य है की उदबुद्ध (जागरित) हुआ संस्कार ही स्मृतिका कारण कहा गया है । स्मृतिके उद्बोधक हैं सादृश्य अदृष्ट तथा चिन्ता आदि । यहाँ आदिशब्दसे साहचर्यका ग्रहण होता है ॥३८॥

बालके मुखके सदृश चन्द्रके दर्शनसे बालकके मुखकी स्मृति सादृश्यसे उद्बुद्ध हुए संस्कारसे उत्पन्न होती है । तथा देखे हुए भगवान् श्रीरामजीके दिव्यविग्रहकी स्मृति अदृष्टवशात् उद्बुद्ध हुए संस्कारसे होती है ॥३९॥

चिन्तासे उद्बुद्ध हुए संस्कारसे भक्तवत्सल भगवान् श्रीसीतारामजीकी स्मृति उत्पन्न होती है । एक सहचारीके देखनेसे संस्कारके उद्बुद्ध होने पर दूसरे सहचरका स्मरण होता है ॥४०॥

कहीं पर कालकी दीर्घताके हेतुसे और कहींपर व्याध्यादिके हेतुसे संस्कारके नष्ट हो जानेपर स्मृति नहीं उत्पन्न होती है ॥४१॥

Scanned by CamScanner

प्रत्यक्षे प्रत्यभिज्ञाऽपि ह्यन्तभूता यथा स्मृतिः ।
भावान्तरमभावो हि प्रत्यक्षं तद्ग्रहो ततः ॥४२॥
प्रमेयपरिशोधिन्यां सम्यक् च प्रतिपादिता ।
भावता खल्वभावानां द्रष्टव्या सा तु तत्र हि ॥४३॥
प्रतिभा संशयश्चोहः प्रत्यक्षत्वेन सम्मताः ।
विज्ञानस्य च सर्वस्य यथार्थत्वं यतो मतम् ॥४४॥
विज्ञानवादिनो बौद्धा आत्मख्यातिं वदन्ति हि ।
ख्यातिर्विषयरूपेणाऽवभासो हि मतेर्मता ॥४५॥

प्रत्यभिज्ञा

इन्द्रियोंसे सहकृत संस्कारसे उत्पन्न हुई मतिको 'प्रत्यभिज्ञा' कहते हैं । 'सोऽयं देवदत्तः' यह वही देवदत्त है' यह ज्ञान प्रत्यभिज्ञा है । प्रत्यभिज्ञा भी स्मृतिके समान प्रत्यक्षमें अन्तर्भूत (समाविष्ट) होती है । अभाव भावान्तरस्वरूप ही है । इसलिये अभावज्ञान अर्थात् अनुपलब्धि भी प्रत्यक्ष ही है ॥४२॥

अभावोंके भावान्तरत्वका प्रतिपादन मेरी बनाई हुई प्रमेयपरिशोधिनीमें अच्छे प्रकारसे किया गया है । उसे वहीं देखना चाहिये ॥४३॥

प्रतिभा संशय और ऊह भी प्रत्यक्षरूपही माने गये हैं । इसका कारण यह हैं कि सिद्धान्तमें सभी ज्ञान यथार्थ माने गये हैं ॥४४॥

आत्मख्यातिनिरूपणम्

विज्ञानवादी बौद्ध आत्मख्याति मानते हैं । आत्मनः ख्यातिः आत्मख्यातिः । यहाँ पर आत्माका अर्थ है ज्ञान तथा ख्यातिशब्दका

इदं रौप्यं मतिः शुक्तौ रजतत्वेन भासते ।
नास्त्यन्यविषयापेक्षाऽयं घट इति बुद्धिवत् ॥४६॥
नेत्रं विना यतोऽध्यक्षं तद् रौप्यं विमतं मतिः ।
सम्मतबुद्धिवत् बौद्धा प्रमाणं च वदन्ति हि ॥४७॥
तद् वरं न यतस्तत्र रजतं च भवेत् कुतः ? ।
नालोकादेर्यतस्तस्य स्पष्टतामात्रहेतुता ॥४८॥

अर्थ है विषयरूपसे अवभासित होना । इसलिये आत्मख्यातिका अर्थ हुआ ज्ञानका विषयरूपसे प्रकाशित होना ॥४५॥

चाकचिक्यके कारण शुक्तिमें 'इदं रजतम्' 'यह चांदी है' ऐसी बुद्धि होती है । बौद्ध लोग कहते हैं कि इस स्थलमें 'इदं रौप्यम्' 'यह चाँदी है' यह मति ही रजतरूपसे अवभासित होती है । 'अयं घटः' 'यह घट है' इस बुद्धिके समान यहाँपर भी अन्य विषयकी अपेक्षा नहीं है । उनके मतमें 'अयं घटः' इत्यादि सर्वस्थलोंमें बुद्धिका ही घटादि विषयरूपसे उल्लेख होता है ॥४६॥

बौद्धलोग अपने उक्त कथनमें अनुमान प्रयोग करते हैं कि— "विमतं रजतं मतिः चक्षुरादिप्रयोगं विनाऽपरोक्षत्वात् सम्मतबुद्धिवत् । 'शुक्ति रजतस्थलमें विवादग्रस्त रजत बुद्धि है । चक्षुः आदिके विनाही अपरोक्षरूपहोनेसे । जैसे 'अयं घट' आदि बुद्धि ॥४७॥

आत्मख्यातिखण्डनम्

वह ठीक नहीं है । क्योंकि शुक्तिरजतस्थलमें रजत किससे उत्पन्न होता है ? आलोकादि तो विषयकी स्पष्टतामात्रमें हेतु हैं । इसलिये

Scanned by CamScanner

रजताकारता तत्र चक्षुरादेश्च नो भवेत् ।
विषयाणां यतस्तस्य नियमस्यैव हेतुता ॥४९॥
पूर्वज्ञानान्न तत्राथ रजताकारतामतिः ।
इतरज्ञानतो यस्माद् दृष्टमन्यद्भ्रमो न हि ॥५०॥
नापि बाह्याद् यतस्तस्य स्वीकारो न हि तन्मते ।
संस्कारबलतो चाथ रजताकारकल्पना ॥५१॥
वक्तुं न शक्यते तत्र विकल्पासहता यतः ।
किं स्थायी क्षणिको वाऽथ संस्कारश्च स उच्यताम् ॥५२॥

सहकारीप्रत्ययनामक आलोकादि रजताकारके उत्पादक नहीं हो सकते हैं ॥४८॥

विषयनियमनमात्रमें कारण होनेसे अधिपतिनामक चक्षु आदि भी शुक्तिरजतस्थलमें रजताकारके उत्पादक नहीं हो सकते हैं ॥४९॥

समनन्तरप्रत्ययनामक पूर्वज्ञानसे भी रजताकार उत्पन्न नहीं हो सकता है । क्योंकि अन्यके ज्ञानसे अन्यका भ्रम कभी भी दृष्टिगोचर नहीं हुआ है ॥५०॥

आलम्बनप्रत्ययनामक बाह्यसे भी वहां पर रजताकारकी उत्पत्ति नहीं कही जा सकती है । क्योंकि विज्ञानवादी बौद्धलोग बाह्यपदार्थका अङ्गीकार ही नही करते हैं ।"संस्कारबलसे रजताकारकी कल्पना की जाती है" यह भी नहीं कह सकते हैं । क्योंकि यह कथन विकल्पका सहन नहीं कर सकता है । वह विकल्प इस प्रकार है — रजताका-रोत्पादक संस्कार स्थायी है अथवा क्षणिक ? ॥५१॥ ॥५२॥

आद्ये क्षणिकवादस्य हानिर्बौद्धैर्मतस्य हि ।
अन्त्ये चाद्यक्षणे नष्टो रजतं कल्पयेत् कथम् ॥५३॥
विज्ञानमात्रवादस्य हानिः पक्षद्वयेऽपि च ।
किं च स रजताकारः कथमुत्पद्यते खलु ॥५४॥
बाह्यार्थाज्जायते नासौ बाह्यार्थास्वीकृतिर्यतः ।

आद्यपक्षमें अर्थात् उक्तसंस्कारको स्थायी माननेपर बौद्धोंके मानेहुए क्षणिकवादकी हानि होती है । अन्तिमपक्ष माननेपर अर्थात् रजतोत्पादक संस्कारको क्षणिक मानने पर प्रथमक्षणमें ही उत्पन्न होकर नष्ट हुआ संस्कार द्वितीयक्षणमें रजतको उत्पन्न कैसे करेगा ? संस्कार और रजत दोनों एकक्षणमें ही साथ ही साथ उत्पन्न नहीं हो सकते हैं । क्योंकि यहांपर संस्कारको कारण तथा रजतको कार्य माना गया है । कारण नियमसे पूर्ववर्ती होता है और कार्य उत्तरकालवर्ती होता है । कारण कार्य दोनों एकही क्षणमें उत्पन्न नहीं हो सकते हैं । मनुष्यके एकसाथमें उत्पन्न हुए दोनों हाथोमें कार्यकारणभाव नहीं होता है । अर्थात् " एकहाथमेंसे दूसरा हाथ उत्पन्न हुआ " ऐसा नहीं माना जाता है ॥५३॥

उक्त संस्कारको स्थायी तथा क्षणिक माननेवाले दोनों ही पक्षोंमें विज्ञानसे अतिरिक्त संस्कारके स्वीकारकरनेसे विज्ञानवादी बौद्धोंके विज्ञा-नमात्रवादकी हानि होती है ।

एक बात और पूछता हूँ कि " वह रजताकार उत्पन्न कैसे होता है ? " ॥५४॥

वह रजताकार बाह्यार्थसे उत्पन्न नहीं होता है । क्योंकि विज्ञा-

Scanned by CamScanner

मोक्षरूपं विशुद्धं हि ज्ञानं तज्जनकं न तत् ॥५५॥
दुष्टकारणजं चापि ज्ञानं तज्जनकं न हि ।
रजताग्राहकं तद्धि तद्भिन्नं वेति कथ्यताम् ॥५६॥
नाद्यो भिन्नकालत्वाद् हेतुहेतुमतोस्तयोः ।
रजतस्यापरोक्षस्य प्रतीतिर्जायते कथम् ॥५७॥
अन्त्ये रजतजन्यं तज् ज्ञानं वर्त्तते न वा ? ।
स्वीकारो वाह्यरौप्यस्य चाद्ये पक्षे मते भवेत् ॥५८॥

नवादी बौद्धलोग बाह्यार्थका स्वीकार नहीं करते हैं । मोक्षरूप होनेसे विशुद्धज्ञान भी रजताकारका उत्पादक नहीं हो सकता है ॥५५॥ दुष्टकारणजन्यज्ञान भी रजताकारोत्पादक नहीं है । यदि कहें कि 'दुष्ट-कारणसे उत्पन्न ज्ञान यहाँ रजताकारका उत्पादक है' तो हम पूछते हैं कि वह दुष्टकारणजन्यज्ञान ही उस रजतका ग्राहक है अथवा अन्य ? ॥५६॥

प्रथमपक्ष मानना ठीक नहीं है । क्योंकि कारणरूप ज्ञान और कार्यरूप रजत के भिन्नकालीन होनेसे और दोनों के क्षणिक होनेसें अपरोक्ष रजतकी प्रतीति कैसे होगी ? ॥५७॥

यदि द्वितीय पक्ष मानकर कहें कि " रजतको ग्रहणकरनेवाला ज्ञान रजतके कारणरूप दुष्टकारणजन्यज्ञानसे भिन्न है " तो हम पूछते हैं कि वह रजतग्राहकज्ञान रजतजन्य है या नहीं ? प्रथमपक्ष मानने-पर बाह्य रजतका स्वीकार करना पड़ता है । जो सिद्धान्तविरुद्ध है । क्योंकि विज्ञानवादीबौद्ध बाह्यअर्थका स्वीकार नहीं करतेहैं ॥५८॥

रजतं विषयभ्रान्त्ये तज्ज्ञानस्य भवेत् कथम् ।
आकारार्पकहेतुर्हि विषयः सम्मतो मतेः ॥५९॥
असत्ख्यातिं हि मन्यन्ते बौद्धास्तु शून्यवादिनः ।
मानमेयविभेदाद्धि पदार्थो द्विविधाः किल ॥६०॥
तत्र प्रमेयसिद्धौ हि मानसिद्धिरपेक्षिता ।
मानसिद्धिः कुतो मानात् तस्मादेवान्यतोऽथवा ॥६१॥
आत्माश्रयो हि तत्राद्ये द्वितीये त्वनवस्थितिः ।
मानसिद्धिर्न तत् तस्मान्मेयसिद्धिश्च दुर्लभा ॥६२

यदि अन्तिमपक्षको स्वीकारकर कहें कि " वह ज्ञान रजतजन्य नहीं है ' तो भी ठीक नहीं । क्योंकि ऐसा माननेपर रजत ज्ञानका विषय कैसे होगा ? क्योंकि ज्ञानाकारसमर्पक हेतु ही तो ज्ञानका विषय माना गया है ॥५९॥

असत्ख्यातिवादः

शून्यवादी बौद्ध लोग असत्ख्याति मानते हैं । वे कहते हैं कि प्रमाण और प्रमेय भेदसे पदार्थ दो प्रकारके होते हैं । उनका कहना है कि प्रमेयसिद्धिमें प्रमाणसिद्धि अपेक्षित होती है । प्रमाण की सिद्धि उसी प्रमाणसे होती है या अन्यसे ? यदि "प्रमाणसिद्धि उसी प्रमाणसे होती है" यह प्रथम पक्ष स्वीकार करें तो आत्माश्रय दोष होता है । और यदि "प्रमाणसिद्धि उस प्रमाणसे नहीं किन्तु अन्य प्रमाणसे होती है" यह द्वितीय पक्ष स्वीकार करें तो अनवस्था दोष प्राप्त होता है । इसलिये प्रमाणसिद्धि नहीं होती है ।

Scanned by CamScanner

असतो रजतादेस्तत् ख्यातिरेवं वदन्ति ते ।
वक्तुं न शक्यते चैवं विकल्पासहता यतः ॥६३॥

प्रमाणप्रतिषेधोऽयं सिद्धः प्रमाणतो न वा ?
व्याहतिः प्रथमे चान्त्ये मानानङ्गीकृतिः कुतः ॥६४॥

शुक्तिरौप्यस्थले चाथ रजतस्याप्रतीतितः ।

प्रमाणों के सिद्ध हुए बिना प्रमेयपदार्थोंकी सिद्धि भी दुर्लभ ही है ॥६०॥६१॥६२॥

इसलिए शून्यवादी बौद्धलोग शुक्तिरजतस्थलमें असत्रजतकी ही ख्याति मानते हैं। परन्तु विकल्पको सहन न कर सकनेके कारण उक्त प्रकारसे कहा नहीं जा सकता है ॥६३॥

असत्ख्यातिखण्डनम्

वह विकल्प इस प्रकारका है कि उक्त प्रकारका प्रमाणका प्रतिषेध प्रमाणसिद्ध है या नहीं ? प्रथमपक्ष मानने पर व्याघातदोष होता है। तात्पर्य यह है कि यदि प्रमाणनिषेधको प्रमाणसे ही सिद्ध करते हो तो क्यों कहते हो कि प्रमाण नहीं है। यदि दूसरा पक्ष स्वीकार किया जाय कि प्रमाणनिषेध अप्रामाणिक है तब प्रमाण को अङ्गीकार न करना कैसे बन सकता है। अर्थात् दूसरा पक्ष मानने पर प्रमाणनिषेधके अप्रामाणिक होने पर प्रमाणसिद्धि हो ही जाती है ॥६४॥

अख्यातिवाद

मीमांसकलोग शुक्तिरजतस्थलमें रजतकी प्रतीतिके न होनेसे

अख्यातिं त्वितरास्त्यक्त्वा मीमांसका वदन्ति हि ॥६५॥
प्रत्यक्षं न च रौप्यं हि नयनासन्निकर्षतः ।
प्रत्यक्षमिदमंशे हि रजतांशे स्मृतिर्मता ॥६६॥

रौप्यभेदाग्रहादेव प्रवृत्ती रजतार्थिनः ।
एतन्मीमांसकानां हि वचनं न वरं यतः ॥६७॥

रौप्यस्यानुभवश्चात्र प्रत्यक्षत्वेन दृश्यते ।
स्मर्यमाणं तु रौप्यं हि भवेत् कथं प्रवर्त्तकम् ॥६८॥

अन्य ख्यातियोंको छोडकर केवल अख्यातिको ही स्वीकार करते हैं ॥६५॥

शुक्तौ 'इदं रजतम्' 'शुक्तिमें यह रजत है' इस स्थलमें मीमांसकलोग रजतके साथ नेत्रके सन्निकर्ष न होनेसे रजतको प्रत्यक्ष नहीं मानते हैं। वे इस स्थलमें केवल इदम् अंश में ही प्रत्यक्ष मानते हैं। रजतांशमें तो दुकानके रजतकी स्मृति मानते हैं ॥६६॥

इदमंश शुक्ति और रजतके भेदग्रहके न होनेसे ही रजतार्थी पुरुषकी उस रजतको ग्रहण करनेकी प्रवृत्ति होती है।

अख्यातिखण्डनम्

परन्तु मीमांसकोंका उक्त कथन ठीक नही है क्योंकि यहाँ पर रजतका अनुभव प्रत्यक्षरूपसे होता है स्मर्यमाणरूपसे नहीं। दूसरी बात यह है कि स्मर्यमाण रजत प्रवर्त्तक कैसे हो सकता है ? ॥६७॥६८॥

Scanned by CamScanner

प्रवृत्तेर्हेतुता दृष्टा नाग्रहे केनचित् क्वचित् ।
सत्यरौप्ये प्रवृत्तिश्च रौप्यभेदाग्रहान्ननु ॥६९॥
रौप्यामेदाग्रहादेव निवृत्तिश्च कुतो न हि ? ।
सत्यरौप्यान्निवृत्तिश्च रौप्याभेदाग्रहात् क्वचित् ॥७०॥
प्रतीतिरन्यथाख्यातिरन्यस्य त्वन्यरूपतः ।

जो कहा गया है कि 'रजतभेदके अग्रहसे (ज्ञानाभावसे) रजतार्थीकी प्रवृत्ति होती है' वह भी ठीक नहीं है क्योंकि ग्रहाभावको प्रवृत्तिके कारणरूपसे किसीने कहीं भी देखा नहीं है। यदि कहें कि 'सत्यरजतमें प्रवृत्ति भी रजतभेदके ग्रहाभावसे ही होती है' ॥६९॥

तो आपके इस कथन पर हमभी कहते हैं कि रजतके अभेदके ग्रहाभावसे ही रजतार्थीकी निवृत्ति क्यों नहीं हो जाती है ? क्योंकि रजतके अमेदके अग्रहसे सत्यरजतसे 'रजतार्थीकी निवृति भी क्वचित् दृष्टिगोचर होती है ।

तात्पर्य यह है कि निवृत्तिके कारण रजतके अमेदग्रहके अभावसे शुक्ति रजतमें जैसे रजतार्थीकी प्रवृत्ति होती है वैसे ही प्रवृत्तिके कारण रजतके अभेदग्रहके अभावसे रजतार्थीकी निवृत्ति क्यों नहीं हो जाती है । रजतके अभेदग्रहके अभावसे सत्यरजतसे रजतार्थीकी निवृत्ति कहीं कहीं देखी जाती हैं ॥७०॥

अन्यथाख्यतिवाद

अन्यवस्तुकी अन्यरूपसे प्रतीतिको अन्यथाख्याति कहते हैं। शुक्तिरजतस्थलमें नैयायिकलोग अन्यथाख्याति मानते हैं। वे लोग

विमतः शुक्तिखण्डो हि विषयो रौप्यसंविदः ॥७१॥
रौप्यहेतुविभिन्नो यद् रजतार्थिप्रवर्त्तकः ।
नैयायिका वदन्त्येवं सत्यरौप्यं यथा तथा ॥७२॥
समीचीनं न तत् तत्र विकल्पासहता यतः ।
अन्यथात्वं हि किं ज्ञाने फले वस्तुनि वा ननु ? ॥७३॥

कहते हैं कि देशान्तर्गत तथा कालान्तर्गत रजत ही दोषग्रस्त चक्षु इन्द्रियद्वारा शुक्तिरूपसे गृहीत (ज्ञात) होता है। अन्यथाख्याति में सादृश्यके नियामक होनेसे शुक्तिसदृश रजतकी ही शुक्तिमें प्रतीति होती है। अन्य असदृश पदार्थकी प्रतीति नहीं होती है । नैयायिक लोग शुक्तिरजतस्थलमें अन्यथाख्याति होनेमें अनुमान प्रमाण कहते हैं कि–विमतः शुक्तिखण्डो रजतज्ञानविषयो रजतहेतु भिन्नत्वे सति रजतार्थिप्रवर्त्तकत्वात् सत्यरजतवत् । रजतहेतुरूप रजतखानि आदिसे भिन्न होकर भी रजतार्थीका प्रवर्त्तक होनेसे सत्यरजतके समान विवादग्रस्त शुक्तिखण्ड रजतज्ञानका विषय है ॥७१॥ ॥७२॥

अन्यथाख्यातिखण्डनम्

विकल्पको सहन न कर सकनेके हेतुसे नैयायिकोंका उक्त कथन अच्छा नहीं है। नैयायिक महानुभाव कहते हैं कि 'अन्यवस्तु को अन्यरूपसे प्रतीतिको अन्यथाख्याति कहते हैं।' इसमें हम पूछते हैं कि उक्त अन्यथात्व ज्ञानमें है फलमें है अथवा वस्तुमें है ? ॥७३॥

Scanned by CamScanner

नाद्यो ज्ञाने यतः शुक्तिः स्वाकारमर्पयेत् कुतः ।
द्वितीयं चापि नो यस्माद् दृश्यते न स्वरूपतः ॥७४॥
भ्रमे खल्वभ्रमे वाऽथ वैषम्यं स्फुरणस्य न ।
परिणामोऽन्यथात्वं हि तृतीये रजतरूपतः ॥७५॥
शुक्तौ रजततादात्म्यमथवा सम्मतं ननु ?
बाधो न सम्भवेत् तस्मात् पक्षो न चादिमोऽत्र हि ॥७६॥
परिणामग्रहत्वाच्चाबाध्यो हि रजतग्रहः ।
नान्तिमो भिन्नयोर्यस्मात् तादात्म्यस्य न सम्भवः ॥७७॥

प्रथमपक्ष नहीं कह सकते हैं। क्योंकि रजताकारग्रस्त ज्ञानमें शुक्तिका स्वाकार समर्पणकरना असम्भवित है । इसलिये ज्ञानमें शुक्ति अपना आकार कैसे समर्पण करेगी ? इसलिये ज्ञान में अन्यथात्व नहीं हो सकता है । द्वितीय पक्ष भी नहीं कह सकते हैं । क्योंकि यहाँ स्फुरण ही फल है । भ्रममें अथवा सम्यक् ज्ञानमें स्फुरणरूपफलका स्वरूपसे वैषम्य दिखलाई नहीं देता है । तृतीयपक्षका स्वीकार भी नहीं किया जा सकता हैं। क्योंकि तृतीयपक्ष स्वीकार करनेपर अर्थात् वस्तुमें अन्यथात्व माननेपर प्रश्न होता है कि—उक्त अन्यथात्व शुक्तिमें रजतरूपसे परिणाम है ? अथवा शुक्तिमें रजततादात्म्य है ? प्रथमपक्ष नहीं मान सकते हैं क्योंकि प्रथमपक्ष माननेपर परिणामज्ञान होने से रजतज्ञानका क्षीरपरिणामदधिज्ञानके समान बाध न होगा। अन्तिमपक्ष भी नहीं कह सकते हैं। क्योंकि दो भिन्न वस्तुओंका तादात्म्य नहीं हो सकता है ॥७४॥ ॥७५॥ ॥७६॥ ॥७७॥

सम्मता खल्वनिर्वाच्यख्यातिरद्वैतवादिभिः ।
शुक्तिरौप्यस्य नो सत्त्वं दर्शनाद् भ्रान्तिबाधयोः ॥७८॥
असत्त्वं चापि नो तस्य ख्यातिबाधौ यतस्ततः ।
सदसद्भ्यामनिर्वाच्यमपूर्वं रजतं हि तत् ॥७९॥
अज्ञानस्य हि शुक्तेश्च परिणामात्मकं मतम् ।
तदेव रजतज्ञानविषयः बुधसम्मतः ॥८०॥

अनिर्वचनीयख्यातिवादः

अद्वैतवादी महानुभाव तो शुक्तिरजतस्थलमें अनिर्वचनीय ख्याति मानते हैं। सत्त्व और असत्त्व रूपसे अनिर्वचनीय (निर्वचन करनेके अयोग्य) रजतादिकी प्रतीतिको 'अनिर्वचनीयख्याति' कहते हैं। शुक्तिरजतस्थलमें 'इदं रजतम्' 'यह रजत है' इस प्रकारकी भ्रान्ति होती है। पश्चात् समीपमें जानेपर 'इदं न रजतम्' 'यह रजत नहीं है' इसप्रकारसे उसका बाध भी होता । इसलिये शुक्तिरजतस्थलमें रजतको सत् नहीं मानते हैं। क्योंकि उक्तस्थलीय रजतको सत् (सत्य) मानने पर भ्रान्ति और बाध दोनों असम्भवित हो जावेंगे। इसी प्रकार शुक्तिरजतको असत् मानने पर ख्याति (प्रतीति) और बाध असम्भवित हो जाते हैं। इसलिये उक्त रजतको असत् भी नहीं कह सकते हैं। इसलिये उक्तस्थलमें शुक्तिके अज्ञानका परिणामरूप सत् और असत् रूपसे निर्वचनायोग्य (अनिर्वचनीय) अपूर्वरजत उत्पन्न होता है। वहीं रजत उक्तस्थलमें रजतज्ञानका विषय (ज्ञेय) है। ऐसा विद्वानों का मत है ॥७८॥७९॥८०॥

Scanned by CamScanner

वक्तुं न शक्यते चैवं विकल्पासहता यतः ।
तादृग्रौप्यस्य चोत्पत्तौ कारणं सम्मतं हि किम्?॥८१॥
प्रतीतिरिन्द्रियं वाथ दोषस्तद्गतोऽथवा ।
इन्द्रियाणि च दुष्टानि दोषो विषयगोथवा? ॥८२॥
उत्पत्तेः प्रथमं तस्या असम्भवान्न चादिमः ।
इन्द्रियं न यतस्तस्य ज्ञानकारणता मता ॥८३॥
न चापीन्द्रियदोषश्च तादृग्रौप्यस्य कारणम् ।
दोषस्य पुरुषस्थत्वाच्छुक्तौ तद्धेतुता कुतः ॥८४॥

अनिर्वचनीयख्यातिखण्डनम्

परन्तु विकल्पको न सह सकनेके कारणसे उक्त प्रकारसे नहीं कहा जा सकता है। वह विकल्प इस प्रकार है—उक्त प्रकारके रजतकी उत्पत्तिमें कारण क्या है? ॥८१॥

उक्त रजतकी उत्पत्तिमें प्रतीति कारण है? अथवा इन्द्रिय कारण है।? अथवा इन्द्रियगत दोष कारण है? अथवा दुष्टइन्द्रियाँ कारण हैं? अथवा विषयगत दोष कारण है? ॥८२॥

उत्पत्तिसे पूर्वकालमें प्रतीतिके असम्भवित होनेसे "प्रतीति ही शुक्ति रजतकी उत्पत्तिका हेतु है।" इस प्रकारके प्रथम पक्षको नहीं स्वीकार कर सकते हैं। इन्द्रियाँ तो ज्ञानमात्र में ही कारण हैं। इसलिये इन्द्रियाँ उक्त रजतोत्पत्तिमें कारण नहीं कही जा सकती हैं। इसलिये द्वितीयपक्ष भी ठीक नहीं है ॥८३॥

इन्द्रियगत दोष तो पुरुषमें रहता है इसलिये वह शुक्तिरजत

स्वोत्पन्नग्रहमात्रे हि विशेषकरता यतः ।
दुष्टानामिन्द्रियाणां तत् तद्धेतुत्वं न सम्भवेत् ॥८५॥
स्वीकृते पञ्चमे पक्षे दोषे विषयगेऽपि हि ।
विषयमात्रवृत्तित्वं पुरुषवृत्तितापि वा ॥८६॥
भ्रमस्यासम्भवश्चाद्ये पुरुषे यन्न दोषिता ।

का उत्पादक कैसे हो सकता है? इसलिये तृतीयपक्ष भी ठीक नहीं है ॥८४॥

दुष्टइन्द्रियाँ तो स्वोत्पन्न ज्ञानमें ही कुछ विशेषता कर सकती हैं। इसलिये दुष्टेन्द्रियाँ भी उक्त रजतोत्पत्तिके कारण नहीं हो सकती हैं। इसलिये चतुर्थ पक्ष भी ठीक नहीं है ॥८५॥

यदि पाँचवाँ पक्ष स्वीकार करें अर्थात् यदि विषयगत दोष को ही उक्त रजत का उत्पादक मानें तो हम पूछते हैं कि वह दोष विषयमात्रनिष्ठ है? अथवा पुरुषनिष्ठ भी है? अर्थात् पुरुष और विषय उभयनिष्ठ है? ॥८६॥

प्रथम पक्ष का स्वीकार नहीं किया जा सकता है। क्योंकि दोषको विषयमात्रमें रहनेवाला माननेपर पुरुष निर्दोष हो जाता है। निर्दोष पुरुषको भ्रम नहीं हो सकता है। इसलिये प्रथमपक्ष मानने पर भ्रम ही असम्भवित हो जाता है। अन्त्यपक्ष भी नहीं माना जा सकता है। क्योंकि दोषको विषय और पुरुष दोनोंमें रहनेवाला मानें तो उभयनिष्ठ दोष विषयमात्रमें रहे हुए कार्यका उत्पादक कैसे हो सकता है? अर्थात् विषय और पुरुष उभयनिष्ठ दोष विषयरूप रजतनिष्ठ उत्पत्तिका हो हेतु कैसे बन सकता है? इसलिये पञ्च-

Scanned by CamScanner

अन्त्ये विषयमात्रे हि दोषो न कार्यकृद् भवेत् ॥८७॥
सत्ख्यातिः स्वीकृता तस्मान्निरस्य ख्यातिपञ्चकम्।
ज्ञानविषयसत्यत्वं सत्ख्याताावुररीकृतम् ॥८८॥
भ्रमत्वं व्यवहारस्य बाधाद् भवेन्न चान्यथा ।
पञ्चीकरणतः सर्वे भूताः सर्वत्र सम्मताः ॥८९॥
शुक्तौ हि रजतांशस्य सत्ता च स्वीकृता ततः।
शुक्तिरौप्यग्रहस्यातः सत्यता विषयस्य हि ॥९०॥

मपक्ष भी नहीं माना जा सकता है। उक्त प्रकारके विकल्पोंके न सह सकनेसे अनिर्वचनीयख्यातिकी सिद्धि नहीं हो सकती है ॥८७॥

सत्ख्यातिनिरूपणम् ।

उक्तप्रकारसे उक्त पाँच ख्यातियोंका खण्डनकरके सत्ख्याति का स्वीकार किया गया है। सत्ख्यातिवादमें ज्ञानके विषयकी सत्यताका स्वीकार किया गया है ॥८८॥

शङ्का होती है कि जब ज्ञानका विषय सत्य ही है तो उस ज्ञानको भ्रम क्यों कहते हैं? इस शंकाके उत्तररूपसे कहा जाता है कि व्यवहारके बाधित होनेसेही ज्ञानको भ्रम कहते हैं। उस ज्ञानको भ्रम माननेमें दूसरा कोई भी कारणनहीं है। पचीकरणप्रक्रियासे 'सब भूतसबमें मिश्रित हैं' इसे सभी वेदान्तियोंने स्वीकार किया है ॥८९॥

इसलिये शुक्तिमें रजतके अँश भी स्वीकार किये गये हैं। अतः शुक्तिरजतज्ञानका विषयरूप रजत सत्य ही है ॥९०॥

रजतांशस्य चाल्पत्वाद् भ्रमस्तादृग्ग्रहो मतः ।
निवर्तते स शुक्त्यंशभूयस्त्वज्ञानतः खलु ।९१॥
यदंशा यत्र विद्यन्ते भ्रमस्तस्यैव तत्र हि।
अतः सर्वत्र सर्वस्य भ्रमो न प्राज्ञसम्मतः ॥९२॥
भजते चैकदेशं हि तुल्यस्तुल्यस्य वस्तुनः ।
ततस्तुल्ये च तुल्यस्य स्वीकुर्वन्ति भ्रमं बुधाः ॥९३॥

परन्तु जब रजतांशके स्वल्प होने तथा शुक्तिके अंशके अधिक होनेका ज्ञान होता है तो शुक्तिमें हुए 'यह रजत है' इस व्यवहारके बाधित होने पर 'यह रजत है' यह ज्ञान भ्रम कहा जाता है ॥९१॥

यह ध्यानमें रखना चाहिये कि जिसमें जिसके अंश होते हैं उसमें उसका ही भ्रम होता है। इसलिये विद्वान्लोग सर्वमें सर्वका भ्रम नहीं मानते हैं। इसीलिये शुक्तिमें रजतका तथा रज्जुमें (डोरीमें) सर्पका भ्रम माना जाता है। रज्जुमें रजतके तथा शुक्ति में सर्पके अंश विद्यमान नहीं होते हैं। अतः वहाँपरउनका भ्रम नहींहोता है॥९२॥

तुल्यवस्तु तुल्यवस्तुके एकदेशमें रहती ह। इसलिये विद्वान् लोग तुल्यपदार्थमें तुल्यपदार्थ के भ्रमको मानते हैं ॥९३॥

स्वप्नज्ञान सत्य है। क्योंकि स्वप्नज्ञानके विषय सत्य हैं। श्रुतिमें सुना गया है। कि—" न तत्र रथा न रथयोगा न पन्थानो भवन्त्यथ रथान् रथयोगान् पथः सृजते— स हि कर्त्ता" (बृ. ४। ३। १०) 'वहाँपर रथ रथयोग (घोड़े) और मार्ग नहीं होते हैं। वह कर्त्ता (ईश्वर) रथोंकी घोड़ोंकी और मार्गोंकी सृष्टि करता है।' इसलिये स्वप्नज्ञान सत्य ही है। क्योंकि स्वप्नज्ञानके विषयरूप स्वाप्निकपदार्थों

Scanned by CamScanner

स्वप्नज्ञानं च सत्यं हि सत्यास्तद्विषया यतः ।
श्रुतौ श्रुता "न तत्रा"दि सृष्टिर्हि परमात्मनः ॥९४॥
तद्द्रष्ट्रैवानुभाव्यत्वादन्यैः सा नानुभूयते ।
तत्तत्कालावसानत्वात् पश्चान्नैवावगम्यते ॥९५॥
पीतश्च शङ्ख इत्यादौ पित्तद्रव्येण संयुताः ।
शङ्खादिना हि युज्यन्ते नेत्रद्वयस्य रश्मयः ॥९६॥
अभिभूतश्च पीतिम्ना शङ्खस्य शुक्लिमा खलु ।
ततो न गृह्यते सोऽथ पीतिमैव हि गृह्यते ॥९७॥

-को श्रुति ईश्वरकी सृष्टिरूपसे वर्णन करती है । ईश्वरकी सृष्टि तो सत्य है ॥९४॥

एक बात ध्यान में रखने योग्य है कि अदृष्टवशात् स्वप्नके पदार्थ स्वप्नद्रष्टाके अनुभवके ही विषय होते हैं । इसलिये अदृष्ट न होने से अन्यपुरुष उन स्वप्नके पदार्थोंका अनुभव नहीं कर सकते हैं । तथैव स्वप्नके अवसानके साथ ही स्वप्नके पदार्थोंका भी अवसान (अन्त) हो जाता है । इसलिये जागने पर स्वप्नद्रष्टा पुरुष भी उन स्वप्नके पदार्थोंको नहीं देख सकता है ॥ ९५ ॥

'पीला शंख है' इत्यादि स्थल में पित्तद्रव्यसे संयुक्त नेत्ररश्मियां शंखादि पदार्थोंसे संयुक्त होती हैं ॥ ९६ ॥

शंख की शुक्लिमा पित्तद्रव्यकी पीतिमासे अभिभूत हो जाती है । इसलिये शंखकी शुक्लिमा प्रतीत नहीं होती है । पीतिमामात्र प्रतीत होती है । इसलिये पीतः शंखः (पीला शंख) ऐसी प्रतीति होती है ॥९७॥

प्रत्यक्ष

निष्क्रान्तत्वात् स्वनेत्राद्धि सूक्ष्मः स्वेनैव गृह्यते ।
पित्तज्ञानजस्तत्र संस्कारोऽस्ति सहायकः ॥९८॥
जपापुष्पप्रभाभिश्चाभिभूतं स्फटिकं ततः ।
'जपापुष्पसमीपस्थस्फटिकं लोहितं' मतिः ॥९९॥
सत्यभूता यतस्तत्र स्वच्छस्फटिकसंयुता ।
जपापुष्पप्रभा ह्येव विस्तृता गृह्यते स्फुटम् ॥१००॥
मरीचिका जलज्ञानं सत्यमेव मतं यतः ।
पञ्चीकरणतस्तेजःपृथिव्योरम्बु विद्यते ॥१०१॥

ध्यान में रखना चाहिये कि नेत्ररश्मियों द्वारा लाया हुआ वह पित्तद्रव्य बहुत सूक्ष्म होता है । स्वनेत्रोंसे निष्क्रान्त होनेके कारण वह पांडुरोगग्रस्त (पीलियाका रोगी) पुरुष ही उसका अनुभव कर सकता है अर्थात् उसे देख सकता है । पित्तज्ञानसे उत्पन्न संस्कार उस देखनेमें सहायक होता है ॥ ९८ ॥

जपापुष्पके समीपमें रहा हुआ स्फटिक जपापुष्पकी प्रभाओंसे अभिभूत (पराजित) हो जाता है । इसलिये वहां पर "स्फटिकं लोहितम्" (स्फटिक लाल है) यह बुद्धि उत्पन्न होती है ॥ ९९ ॥

उक्त बुद्धि सत्य ही है । क्यों कि वहां पर स्वच्छ स्फटिकसे युक्त तथा विस्तृत जपापुष्पकी प्रभाका ही स्फुट रूपसे ग्रहण होता है ॥ १०० ॥

मरीचिकाजलज्ञान (मृगतृष्णाके जलका ज्ञान) भी सत्य ही माना गया है । क्यों कि पञ्चीकरणप्रक्रिया द्वारा तेज और पृथिवी में भी जलकी सत्ता मानी गई है ॥ १०१ ॥

Scanned by CamScanner

अदृष्टवशतस्तत्र जलमेव हि गृह्यते ।
इन्द्रियदोषतस्तेजःपृथिव्योर्ग्रहणं न तु ॥१०२॥
दिशि दिगन्तरज्ञानं यथार्थं बुधसम्मतम् ।
दिशि दिगन्तरस्यापि सत्ता विद्यते यतः ॥१०३॥
औपाधिको हि दिग्भेदं एकत्वैव दिशो यतः ।
अवच्छेदकरूपैव सिद्धान्ते स्वीकृता च दिक् ॥१०४॥
प्रमेयपरिशोधिन्यां दिङ्निरासोऽवलोक्यताम् ।
ततोऽनिर्वाच्यतासिद्धिर्दिग्भ्रमेऽपि भवेन्न हि ॥१०५॥
शघ्र्यादलातचक्रादावन्तरालग्रहो न हि ।
चक्राकारतया तत्तद्देशसंयुक्तवस्तुनः ॥१०६॥

वहां पर अदृष्टवशात् जलमात्र की ही प्रतीति होती है । इन्द्रियगत दोषके हेतुसे तेज और पृथिवीकी प्रतीति नहीं होती है॥ १०२ ॥

एक दिशामें अन्यदिशाके ज्ञानको भी विद्वानोंने यथार्थ ही माना है। क्योंकि एक दिशामें अन्य दिशाकी सत्ता रहती है ॥ १०३ ॥

दिशा एकही है इसलिये दिशाओं का भेद औपाधिक ही है । मुख्य नहीं है । दूसरी बात यह है कि सिद्धान्त में अवच्छेदकरूपसे ही दिशाका स्वीकार किया गया है ॥ १०४ ॥

दिशानामक पदार्थका खण्डन हमारे बनाये हुए प्रमेयपरिशोधिनीनामक ग्रन्थ में देखना चाहिये । इसलिये दिग्भ्रम होने पर भी अनिर्वचनीय ख्यातिकी सिद्धि नहीं हो सकती है ॥ १०५ ॥

अलातचक्रादिमें (जलते हुए काष्ठचक्रमें) शीघ्रताके हेतुसे मध्यकेप्रदेशकी प्रतीति नहीं होती है । किन्तु तत् तत् देश-

प्रत्यक्ष

भवति ग्रहणं तद्धि यथार्थमेव सम्मतम् ।
ततोऽवलम्बनं चैतन्नाप्यनिर्वाच्यवादिनाम् ॥१०७॥
मुखादेश्च प्रतीतिर्हि यथार्था दर्पणादिषु ।
तैश्च हतगतित्वाद्धि तत्र लोचनरश्मयः ॥१०८॥
गृह्णन्ति हि मुखादींश्च तत्तद्ग्रहणपूर्वकम् ।
अन्तरालाग्रहस्तत्र शीघ्रत्वात् प्राज्ञसम्मतः ॥१०९॥
द्विचन्द्रावगमश्चापि यथार्थ एव सम्मतः ।
एक एव कुतश्चन्द्रो द्वित्वेनाथावलोक्यते ॥११०॥
उच्यते श्रूयतां तत्र कारणं प्राज्ञसम्मतम् ।
चन्द्रग्रहणसामग्री नेत्रतेजोगतिर्द्विधा ॥१११॥

संयुक्त वस्तुकी चक्राकार रूपसे प्रतीति होती है । वह यथार्थ ही है । इसलिये अनिर्वचनीयख्यातिवादियोंका यह अलातचक्रस्थल भी अवलम्बन नहीं हो सकता है ॥ १०६ ॥१०७॥

दर्पणादिकों में मुखादिकी प्रतीति भी यथार्थ ही है । दर्पणादिकोंसे अवरुद्धगति होसे नेत्ररश्मियाँ दर्पणादिग्रहणपूर्वक मुखादिको ग्रहण करती हैं । वहां पर शीघ्रताके हेतुसे अन्तराल (बीचके प्रदेश) का ग्रहण नहीं होता है । इसलिए अपना मुख सन्मुख दर्पण में दिखाई देता है ॥ १०८ ॥ १०९ ॥

द्विचन्द्रज्ञान भी यथार्थ ही माना गया है । शङ्का होती है कि एक होनेपर भी चन्द्र दो रूपसे क्यों दिखलाई देता है ? ॥ ११० ॥

चन्द्रके एक होनेपर भी दो रूप से दिखाई पडनेके विद्वत्सम्मत कारणको कहते हैं कि—चन्द्रको ग्रहण करने की सामग्री दोनो

Scanned by CamScanner

परमार्था च तत्रैका ऋजुः स्वाभाविकी मता।
द्वितीया त्वङ्गुलीरोधाद् वक्रीभूता मता बुधैः ॥११२॥
स्वदेशेन विशिष्टं हि चन्द्रं गृह्णाति चादिमा।
द्वितीयया स्वदेशाद्धि वियुक्तो गृह्यते विधुः ॥११३॥
चन्द्रदेशसमीपस्थदेशयोरुभयोरथ ।
अन्तरालाग्रहाद् बुद्धिर्द्वौ चन्द्राविति जायते ॥११४॥
सर्वं ज्ञानं ततः सत्यं विशिष्टविषयं तथा ।
वस्तुनो निर्विशेषस्य ग्रहणं न प्रमाणतः ॥११५॥
संस्थानरूपजातिर्हि भेदत्वेन मता ततः ।
भेदेनैव विशिष्टस्य प्रत्यक्षेण ग्रहो मतः ॥११६॥

नेत्रोंके तेजोंकी गतियां हैं। वे दो प्रकारकी हैं। दोनों ही सत्य है मिथ्या नहीं हैं। उनमें से एक स्वाभाविक और सीधी है। दूसरी अंगुलीके अवरोधसे वक्र (टेढ़ी) विद्वानों द्वारा मानी गई है ॥१११॥ ॥ ११२ ॥

उन दोनोंमें से प्रथम स्वदेशविशिष्ट चन्द्रका ग्रहण करती है। परन्तु दूसरी स्वदेशसे वियुक्त चन्द्रका ग्रहण करती है। चन्द्रदेश और चन्द्रसमीपदेश दोनोंके बीचके प्रदेशके प्रतीत न होनेसे दो चन्द्र हैं एसी प्रतीति होती है ॥ ११३ ॥ ११४ ॥

इसलिये सभी ज्ञान सत्य तथा विशिष्टविषयक ही हैं। निर्विशेष वस्तुका ज्ञान प्रमाणसे होता ही नहीं है ॥ ११५ ॥

संस्थानरूप (आकाररूप) जाति ही भेदरूप है। इसलिए भेद-

भेद इत्येतदुक्तौ तु ह्यपेक्षा प्रतियोगिनः ।
न स्वरूपे ततो दोषाश्चानवस्थादयोऽपि न ॥११७॥

विशिष्ट वस्तुका ही प्रत्यक्षप्रमाणसे ग्रहण होता है। यह सिद्धान्त में माना गया है ॥ ११६ ॥

'भेद' इस कथनमें प्रतियोगीकी अपेक्षा होती है स्वरूप में नहीं। इसलिये अनवस्था आदि दोष नहीं होते हैं। यहाँ पर आदि शब्द से पर्यायत्व तथा अन्योन्याश्रय दोषोंको जानना चाहिये।

तात्पर्य यह है कि 'घटः पटो न' इत्याकारक घटनिष्ठ जो पट-भेद है वह किंस्वरूप है ? घट रूप है ? कि घटनिष्ठ पटान्योन्या-भाव रूप है ? अथवा संस्थानरूप घटत्वजातिरूप है ? प्रथम पक्ष माननेपर अर्थात् पटभेद को घटरूप माननेपर प्रथम तो स्वरूपव्यवहार के समान सर्वसे भेदव्यवहार भी प्राप्त होगा। दूसरा दोष यह होगा कि स्वरूपमात्र भेद है। ऐसा मानने पर "भेद प्रतियोगीके अपेक्षित है" यह नहीं कहा जा सकेगा। क्योंकि स्वरूप प्रतियोगीके अपेक्षित नहीं होता है। तीसरा दोष यह होगा कि 'कुम्भः कलशः' के समान 'घटः भिन्नः' इस प्रकार पर्यायता भी प्राप्त होगी। इसलिए प्रथमपक्ष मानना ठीक नहीं है। दूसरा पक्ष माननेपर घटमें रहे हुए पटभेद में घटभेद मानना पडेगा। उस पटभेदनिष्ठ घटभेदमें पटभेद का भेद मानना पड़ेगा। इस प्रकार अनवस्था दोष प्राप्त होगा। दूसरा दोष यह होगा कि घटत्वजातिविशिष्ट घटके ज्ञात होनेपर उस में पटभेदका ग्रहण होता है। और पटभेदके ग्रहण होनेपर जातिविशिष्ट वस्तुका ग्रहण होता है। क्योंकि जब तक घटमें

Scanned by CamScanner

दशमस्त्वमसीत्यत्र प्रत्यक्षं न मतं बुधैः ।
अहं हि दशमश्चास्य वाक्यजन्यत्वहेतुतः ॥११८॥

प्रत्यक्षं हि भवेन्नो चेद धर्मवाँस्त्वमसीति च ।
नन्वत्रातीन्द्रियत्वेन प्रत्यक्ष नेति चेत् तदा ॥११९॥

घटभेदका ग्रहण नहीं होता है तब तक 'यह घटजातीय है' इस प्रकार से जानना असम्भवित है । इसलिये दूसरा पक्ष मानने में यह अन्योन्याश्रय नामक दोष भी होता है । इसलिए दूसरा पक्ष मानना ठीक नहीं है । इसलिए तीसरा पक्ष मानना ठीक है कि घटनिष्ठ भेद घटत्वजातिरूप है । यह ध्यानमें रखना चाहिए कि जब उसका जातिरूपसे व्यवहार होता है तो उसमें प्रतियोगीकी अपेक्षा नहीं होती है । परन्तु जब उसका भेदरूपसे व्यवहार होता है तब उसमें प्रतियोगीकी अपेक्षा होती है । यह भी ध्यानमें रखना चाहिए कि विशिष्टाद्वैत सिद्धान्तमें जाति संस्थानरूप ही मानी जाती है ॥ ११७॥

'दशमस्त्वमसि' 'दशवां तू है' इस स्थलमें 'तू है' इस अंशमें प्रत्यक्ष होने पर भी विद्वानोंने वाक्यजन्य होनेके हेतुसे "दशमोऽहम्" "दशवां मैं हूँ" इसको प्रत्यक्ष नहीं माना है किन्तु शाब्दबोध (शब्दजन्यज्ञान) ही माना है ॥ ११८ ॥

यदि यहाँ पर 'दशवाँ मैं हूँ' इसको प्रत्यक्ष माना जाय तो 'धर्मवांस्त्वमसि' 'तू धर्मवान् है' इसको भी प्रत्यक्ष मानना पड़ेगा। यदि कहें कि धर्मके अतीन्द्रिय पदार्थ होनेसे 'तू धर्मवान् है' यह प्रत्यक्ष नहीं है ॥११९॥

पर्वतः परभागेन वह्निमानितिवाक्यतः ।
जातं ज्ञानं च वह्न्यंशे प्रत्यक्षं हि भवेद् ध्रुवम् ॥१२०॥
प्रत्यक्षत्वमसिद्धं चेत् वह्निमत्वेन पर्वते ।
प्रत्यक्षता त्वसिद्धैव चात्रापि दशमत्वतः ॥१२१॥
प्रत्यक्षहेतुता तस्माद् वाक्ये बुधैर्न मन्यते ।
तत्त्वमसीति वाक्यं हि प्रत्यक्षजनकं न तत् ॥१२२॥
इत्युपनिषद्भाष्यकारपण्डितसम्राट्स्वामिश्रीवैष्णवाचार्यरचितायां मानरत्नावल्यां प्रत्यक्षप्रमाणपरिच्छेदः ॥१॥

तब 'पर्वतो परभागेन वह्निमान्' 'पर्वत परभागमें वह्निमान् है' इस वाक्यसे उत्पन्न हुए ज्ञानको वह्न्यंश मेंप्रत्यक्ष मानना पड़ेगा ॥ १२०॥

यदि कहें कि पर्वतमें वह्निमत्वरूपसे प्रत्यक्षत्व असिद्ध है । तो हम भी कहेंगे कि यहाँ पर भी दशमत्वरूपसे प्रत्यक्षता असिद्ध ही है ॥ १२१ ॥

इसलिए विद्वान् लोग वाक्यको प्रत्यक्षका हेतु नहीं कहते हैं । अर्थात् वाक्यसे उत्पन्न हुआ ज्ञान 'शाब्दज्ञानरूप' होता है । प्रत्यक्ष रूप नहीं। इस लिए "तत्त्वमसि" वाक्य भी प्रत्यक्ष ज्ञानका जनक नहीं है ॥ १२२ ॥

इत्युपनिषद्भाष्यकारपण्डितसम्राट् स्वामिश्रीवैष्णवाचार्य विरचिते मयूखे प्रत्यक्षप्रमाणपरिच्छेदः ॥ १ ॥

Scanned by CamScanner

अथानुमानप्रमाणम्

अनुमाकरणं चाथानुमानं परिकीर्तितम् ।
परामर्शजबुद्धिर्हि प्राज्ञैरनुमितिर्मता ॥१॥
प्राचीनैर्व्याप्तिबुद्धौ हि तादृक्करणता मता ।
स्वीकृता च परामर्शे सा नव्यैस्तु विचक्षणैः ॥२॥

प्रत्यक्षप्रमाणके निरूपण करनेके अनन्तर अनुमानप्रमाणका निरूपण किया जाता है । अनुमा अर्थात् अनुमितिके करणको 'अनुमान' कहते हैं । विद्वानोंने परामर्शसे उत्पन्न हुई बुद्धिको 'अनुमिति' माना है ॥ १ ॥

प्राचीनोंने व्याप्तिज्ञानको ही अनुमितिका करण (अनुमान) माना है । उनके मतमें अनुमिति फल है । व्याप्तिज्ञान करण है और परामर्श व्यापार है । वे लोग व्यापारवान् कारणको करण मानते हैं । परामर्शरूप व्यापारवाला होनेसे व्याप्तिज्ञानको करण कहते हैं । परामर्श व्याप्तिज्ञानसे उत्पन्न होता है और व्याप्तिज्ञानजन्य अनुमितिका कारण है । इसलिये वह व्यापार कहा जाता है । क्योंकि प्रथम कहा जा चुका है कि व्यापार करणसे उत्पन्न होता है और करणजन्य पदार्थका कारण होता है । परन्तु प्रथम करणका दूसरा लक्षण भी कहा जा चुका है कि "अतिशय साधकको करण कहते हैं ।" उसके अनुसार नवीन लोग परामर्शको ही अनुमितिका करण मानते हैं । इसलिए 'परामर्श' ही अनुमान है ॥ २ ॥

व्याप्त्या किल विशिष्टा हि पक्षधर्मत्वधीश्च या ।
परामर्शतया प्रोक्ता सा च न्यायविशारदैः ॥३॥
वह्निव्याप्यश्च धूमोऽस्ति तद्वाँश्च पर्वतो ह्यसौ ।
इति बुद्धिः परामर्शस्तज्जन्या 'वह्निमान् गिरिः' ॥४॥
पक्षस्य धर्मता चाथ व्याप्यस्य पक्षवृत्तिता ।
धूमवान् पर्वतश्चायं दृष्टान्तस्तत्र सम्मतः ॥५॥
नियतसाहचर्यं हि व्याप्तित्वेनात्र सम्मतम् ।

न्यायविशारद लोगोंने व्याप्तिविशिष्टपक्षधर्मताज्ञानको ही 'परामर्श' कहा है ॥ ३ ॥

यथा—'वह्निव्याप्य धूमवान् अयं पर्वतः' 'वह्निसे व्याप्य धूमवाला यह पर्वत है' यह ज्ञान परामर्श है । इस प्रकारके परामर्शसे उत्पन्न हुई 'पर्वतो वह्निमान्' 'पर्वत वह्निवाला है' यह बुद्धि अनुमिति है ॥ ४ ॥

पक्षमें वर्त्तमान होना ही व्याप्यकी (हेतुकी) 'पक्षधर्मता' है । जैसे 'धूमवान् अयं पर्वतः' 'यह पर्वत धूमवाला है' इस प्रतीतिसे सिद्ध होता है कि धूमरूप हेतु (व्याप्य) पर्वतका धर्म है । इसलिए धूममें पक्षधर्मता है ॥ ५ ॥

व्याप्ति

व्यापकके साहचर्य (साथ रहने) को 'व्याप्ति' कहते हैं । जैसे 'जहाँ धूम है वहाँ वह्नि है ।' इसलिए वह्निकी व्याप्ति धूममें है । इसलिए धूम वह्निका व्याप्य है । यहाँ

Scanned by CamScanner

यत्र धूमोऽस्ति वह्निर्हि तत्रास्तीति निदर्शनम् ॥६॥
अन्वयव्यतिरेकाभ्यां व्याप्तिश्च द्विविधा मता ।
साधनस्य विधौ साध्यविधिश्चाद्या प्रकीर्तिता ॥७॥
अन्या साध्यनिषेधे च निषेधः साधनस्य हि ।
यथाऽनग्निश्च यः सोऽथ निर्धूमश्चेति निश्चयः ॥८॥
भूयःप्रदर्शनादेव व्याप्तिग्रहो हि सम्मतः ।

पर यह ध्यानमें रखने योग्य है कि व्यापक अधिक देशमें रहता है और व्याप्य न्यूनदेश में ही रहता है । जैसे धूम और वह्नि दोनों पर्वत चत्वर (चबूतरा) गोष्ठ (गायों के ठहरने का स्थान व्रज) महानस (पाकशाला) इन स्थानोंमें साथही रहते हैं । परन्तु अग्नि तप्तहुए लोहेके गोलेमें भी रहती है । जहाँ पर धूम नहीं रहता है । इसलिए धूमकी अपेक्षा अधिक देशमें रहनेसे अग्निको धूमका व्यापक कहते हैं । तथा अग्नि की अपेक्षा न्यूनदेशमें रहनेसे धूमको अग्निका व्याप्य कहते हैं ॥ ६ ॥

अन्वयव्याप्ति और व्यतिरेकव्याप्तिके भेदसे व्याप्ति दो प्रकारकी होती है । साधनकी विधि होने पर साध्यकी विधिको 'अन्वय व्याप्ति' कहते हैं । उसे कह दिया गया है कि जहाँ धूम है वहाँ वह्नि है जैसे महानस (पाकशाला) ॥ ७ ॥

व्यतिरेकका अर्थ है अभाव । साध्यके निषेध होने पर साधनके निषेधको 'व्यतिरेक व्याप्ति' कहते हैं । यथा—जो अग्निरहित है वह धूमरहित है जैसे सरोवर ॥ ८ ॥

बहुत बार देखनेसे ही व्याप्तिग्रह होता है । उपाधिके होनेपर

उपाधेश्चाथ सद्भावे व्याप्तिर्हि दुष्यति ध्रुवम् ॥९॥
साध्यस्य व्यापकश्चाथ साधनाव्यापकश्च यः ।
दर्शनशास्त्रमर्मज्ञैः स उपाधितया मतः ॥१०॥
यथाऽऽर्द्रेन्धनयोगो हि धूमे साध्ये तु वह्निना ।
निश्चितशङ्कितत्वाभ्यामुपाधिर्द्विविधो मतः ॥११॥

व्याप्ति दोषवाली हो जाती हैं ॥ ९ ॥

उपाधिनिरूपण

जो साध्यका व्यापक हो और साधनका अव्यापक हो दर्शन शास्त्रके मर्मज्ञ लोगोंने उसे 'उपाधि' माना है ॥ १० ॥

यथा—'पर्वतो धूमवान् अग्नेः' 'पर्वत धूमवाला है वह्निहोनेसे' इस अनुमानमें पर्वत पक्ष है धूम साध्य है और वह्नि हेतु है । यहां पर धूमरूप साध्य और वह्निरूप हेतुकी व्याप्ति दोषवाली है । क्योंकि उसमें आर्द्रेन्धनसंयोग उपाधि है । क्योंकि जहां आर्द्रेन्धनसंयुक्त वह्नि रहती है वहींपर धूम होता है । आर्द्रेन्धन संयोगको उपाधि इसलिये कहते हैं कि जहां धूम है वहाँ आर्द्रेन्धन संयोग भी है इसलिये आर्द्रेन्धन संयोगमें धूमरूप साध्यकी व्यापकता है । जहाँ वह्नि है वहाँ सब जगह आर्द्रेन्धनसंयोग नहीं है । तप्त अयःपिण्ड में वह्नि है परन्तु आर्द्रेन्धनसंयोग नहीं रहता है । इसलिये आर्द्रेन्धनसंयोगमें अग्निरूप साधन की अव्यापकता भी है । इसलिये आर्द्रेन्धनसंयोगमें उपाधिके लक्षणके समन्वयके होनेसे वह उपाधि है । निश्चित और शङ्कित भेदसे उपाधि दो प्रकारकी मानी गई है ॥ ११ ॥

Scanned by CamScanner

सेवात्वाद् विमता सेवा तत्राद्यो दुःखकारणम् ।
राजसेवा यथोपाधिः पापारब्धत्वमत्र हि ॥१२॥
अयत्नेश्वरसेवायां नास्त्यवेति विनिश्चयः ।
एतद्देहावसाने च विमतात्मा सुमुक्तिमान् ॥१३॥
सुनिष्पन्नसमाधित्वाद् यथा शुकस्तथाऽन्तिमः ।
अत्र हि शङ्कितोपाधिः कर्मात्यन्तपरिक्षयः ॥१४॥
द्वे रूपे हि मते हेतोर्व्याप्तिश्च पक्षधर्मता ।
सद्धेतोः पञ्चरूपाणि सम्मतान्यपराणि हि ॥१५॥

निश्चित उपाधि का उदाहरण—राजसेवाके समान विवादग्रस्त सेवा (भगवत्सेवा) सेवाहोनेसे दुःखका कारण है। यहाँ पर दुःखकारणत्व-रूप साध्यके व्यापक होनेसे तथा सेवात्वरूप हेतुके अव्यापकहोने से पापारब्धत्व रूप उपाधि है । वह 'निश्चत उपाधि' है क्योंकि भगवत्सेवामें वह उपाधि नहीं होती है यह निश्चत है। 'शुकदेव जीके तुल्य विवादग्रस्त आत्मा सिद्धसमाधिवाला होनेसे मुक्तिवाला है' इस अनुमानमें मुक्तिरूप साध्यके व्यापक होनेसे तथा निष्पन्नसमाधित्व-रूप हेतुके अव्यापक होनेसे 'कर्मात्यन्तपरिक्षय' (कर्मका अत्यन्तनाश) उपाधि है। परन्तु यह 'शङ्कित उपाधि' है । क्यों कि यह निश्चय नहीं कि उसके अनेकजन्मोपार्जित तथा इसजन्मके उपार्जित समस्तकर्मोंका नाश होगया है । इसलिये यह शंकित उपाधि है ॥१२॥१३॥१४॥

सद्धेतु

सद्धेतुके दो रूप माने गये हैं। व्याप्ति और पक्षधर्मता। सद्धेतुके पांच अन्यरूप भी माने गये हैं ॥ १५ ॥

अनुमान

पक्षसपक्षवृत्तित्वे विपक्षाद्वृत्तिता तथा ।
बाधितविषयान्यत्वं तथाऽसत्प्रतिपक्षता ॥१६॥
सपक्षे निश्चितः साध्यः पक्षः सन्दिग्धसाध्यवान् ।
अथवाऽनुमितेः पक्षश्चोद्देश्यत्वेन सम्मतः ॥१७॥
निश्चितसाध्यशून्योऽथ विपक्षः परिकीर्त्तितः ।
धूमेन अग्निसाध्यत्वे पक्षश्च पर्वतो मतः ॥१८॥
महानसं सपक्षोऽथ विपक्षस्तु महाह्रदः ।
बाधितविषयान्यत्वं बाधितभिन्नता मता ॥१९॥

सद्धेतुके पांच रूप—पक्षवृत्तित्व (पक्षमें रहना) सपक्षवृत्तित्व (सपक्ष में रहना) विपक्षावृत्तित्व (विपक्षमें न रहना) अबाधितत्व (बाधित न होना) तथा असत्प्रतिपक्षितत्व (सत्प्रतिपक्ष न होना) ॥ १६ ॥

सन्दिग्धसाध्यवान् को पक्ष कहते हैं। अर्थात् साध्यसंशय पक्षता है। यह प्राचीनों का मत है। नव्यलोग तो संशयके विनाही गर्जना से गगनकी मेघवत्ताकी अनुमिति होनेसे साध्यसंशयवालेको पक्षनहीं कहते हैं। इसलिये अनुमितिके उद्देश्यको ही पक्ष माना गया है। निश्चत साध्यवालेको सपक्ष कहते हैं ॥ १७ ॥

निश्चत साध्याभाववान् को विपक्ष कहते हैं। पर्वत अग्निमान् है धूमवान् होनेसे इसप्रकार धूमहेतुसे अग्नि सिद्धकरनेमें पर्वत 'पक्ष' है ॥ १८ ॥

सपक्ष महानस (पाकशाला) है तथा विपक्ष महाह्रद (सरोवर) है। बाधितभिन्न को अबाधित कहते हैं ॥ १९ ॥

Scanned by CamScanner

वक्ष्यते बाधितत्वं हि हेत्वाभासनिरूपणे ।
सत्प्रतिपक्षताऽभावो ज्ञेयोऽसत्प्रतिपक्षता ॥२०॥
सत्प्रतिपक्षता चापि हेत्वाभासनिरूपणे ।
वक्ष्यते न ततश्चेह प्रपञ्चिता हि सा खलु ॥२१॥
सद्धेतुर्द्विविधश्चाथ तत्त्वज्ञैः समुदीरितः ।
अन्वयव्यतिरेक्याद्यो द्वितीयः केवलान्वयी ॥२२॥
अन्वयव्यतिरेकाभ्यां व्याप्तिमानादिमो मतः ।
पर्वतो वह्निमान् धूमवत्त्वाद् यथा महानसम् ॥२३॥
यो यश्च धूमवान् स स वह्निमानिति निश्चयः ।
यो ह्यनग्निः स निर्धूमो यथा चास्ति महाह्रदः ॥२४॥

बाधित हेतुका निरूपण हेत्वाभास प्रकारण में किया जायगा । सत्प्रतिपक्षितत्वके अभावको असत्प्रतिपक्षितत्व कहते हैं ॥ २० ॥

सत्प्रतिपक्षितत्वका वर्णन भी हेत्वाभासनिरूपणमें ही किया जायगा। इसलिये उसका वर्णन यहां पर नहीं किया गया है ॥ २१ ॥

सद्धेतुविभाग

तत्त्वज्ञानियोंने सद्धतुको दोप्रकारका कहा है । अन्वयव्यतिरेकी और केवलान्वयी ॥ २२ ॥

अन्वयसे और व्यतिरेकसे व्याप्तिवाले हेतुको 'अन्वयव्यतिरेकी' कहते हैं । जैसे पर्वत वह्निमान् है धूमवान् होनेसे । जो जो धूमवान् है वह वह वह्निमान् है जैसे महानस। जो अग्निरहित है वह धूमरहित है जैसे महाह्रद। इसप्रकार अन्वय और व्यतिरेक व्याप्तिवाला होनेसे यहाँपर धूमरूप हेतु 'अन्वयव्यतिरेकी' है ॥ २३ ॥ २४ ॥

व्याप्तिमानन्वयेनैव द्वितीयोऽभिमतः खलु ।
यथा घटोऽभिधेयोऽस्ति प्रमेयत्वात् पटादिवत् ॥२५॥
केवलव्यतिरेकी तु व्याप्तिमान् व्यतिरेकतः ।
गन्धवत्त्वाद् यथा लोके ह्यन्यभिन्ना क्षितिर्मता ॥२६॥
अन्यभिन्नं न यत् तच्च जलवद् गन्धवन्न हि ।
केवलव्यतिरेकी चैवं गन्धो व्यतिरेकतः ॥२७॥

अन्वयमात्रसे व्याप्तिवाला हेतु 'केवलान्वयी' माना गया है । यथा—"प्रमेय होनेसे पटादिके सदृश घट अभिधेय है ।" यहाँ पर "जो जो प्रमेय है वह वह अभिधेय है जैसे पटादि" इस प्रकार प्रमेय रूप हेतु की अन्वयमात्रसे व्याप्ति है । यहाँ पर "जो अभिधेय नहीं है वह प्रमेय भी नहीं है ।" इस प्रकार व्यतिरेक (अभाव) से व्याप्ति नहीं कह सकते हैं क्योंकि सभी पदार्थ तो अभिधेय हैं और सभी प्रमेय हैं । यदि कोई पदार्थ अभिधेय अथवा प्रमेय न हो तो 'जो अभिधेय नहीं है वह प्रमेय नहीं है ।' इस प्रकार व्यतिरेकव्याप्ति कह सकें । इसलिये उक्त अनुमानमें प्रमेयरूप हेतु अन्वयमात्रसे व्याप्तिमान् होनेसे 'केवलान्वयी' है ॥२५॥

केवलव्यतिरेकीका खण्डन

न्यायशास्त्रवाले केवलव्यतिरेकीनामक हेतु भी स्वीकार करते हैं। उनका कहना है कि—व्यतिरेकमात्रसे व्याप्तिमान् हेतु 'केवलव्यतिरेकी' कहा जाता है । यथा-"पृथिवीतरेभ्यो भिद्यते गन्धवत्वात् यन्नैवं तन्नैवं यथा जलम् । "पृथिवी इतरभिन्न है गन्धवाली होनेसे । जो

Scanned by CamScanner

एवं न शक्यते वक्तुं कुतश्चेदुच्यते यतः।
साध्याप्रसिद्धितो नास्ति केवलव्यतिरेकिता ॥२८॥

इतरभिन्न नहीं है वह गन्धवान् भी नहीं है। जैसे जल। यहाँ पर उक्तप्रकारसे व्यतिरेकमात्रसे व्याप्तिमान् होनेसे गन्धरूपहेतु 'केवलव्यतिरेकी' है। यहाँ पर गन्धवाली पृथिवीमात्रके पक्ष होनेसे अन्वयव्याप्ति नहीं बन सकती हैं। क्योंकि पक्षसे अतिरिक्त कोई गन्धवाला है ही नहीं तो फिर अन्वयव्याप्तिके लिये किसको कहें कि "जो जो गन्धवाला है वह वह इतरभिन्न है।" इसलिये अन्वयसे व्याप्तिमान् न होनेके कारण गन्धवत्वरूप हेतु "केवलव्यतिरेकी" है ॥२६॥ ॥२७॥

किन्तु उक्तप्रकारसे नहीं कह सकते हैं क्योंकि साध्यकी अप्रसिद्धि होनेसे हेतुका केवलव्यतिरेकित्व सिद्ध नहीं हो सकता है। भावार्थ यह है कि—'पर्वतो वह्निमान् धूमात्। महानसवत्।' इस अनुमानका वह्निरूप साध्य महानसरूप सपक्षमें प्रसिद्ध है। इसलिये वह्न्यभावरूप साध्याभावका प्रतियोगी प्रसिद्ध है। इसलिये वह्न्यभाव कहा जा सकता है। यह नियम है कि प्रतियोगीके ज्ञानके बिना प्रतियोगीके अभावका ज्ञान नहीं हो सकता है। 'पृथिवी इतरभिन्ना गन्धवत्वात्' इस अनुमानका साध्य इतरभेद कहीं प्रसिद्ध नहीं है। इसलिये इतरभेदरूप प्रतियोगीके प्रसिद्ध न होनेसे इतरभेदाभावरूप साध्याभावका ज्ञान नहीं हो सकता है। इसलिये व्यतिरेकव्याप्ति नहीं कही जा सकती कि "यत्र इतरभेदाभावः तत्र गन्धाभावः"। इसप्रकार व्यतिरेकव्याप्ति के न होनेसे

पक्ष एव प्रसिद्धं नन्वित्युक्तौ सिद्धसाधनम्।
सपक्षे चेत् तदा नश्येत् केवलव्यतिरेकिता ॥२९॥
विपक्षे चेत् तदा नूनं व्याघातस्यानिवार्यता।
अन्यव्यावर्त्तकत्वं हि लक्षणानां कथं ननु ॥३०॥

गन्धवत्वरूप हेतु केवलव्यतिरेकी नहीं है ॥२८॥

यदि कहें कि 'पक्षमें साध्य प्रसिद्ध है ही' तो सिद्धसाधनदोष प्राप्त होगा। क्योंकि जो वस्तु सिद्ध है उसे ही अनुमानसे सिद्ध किया। यदि कहें कि सपक्षमें साध्य प्रसिद्ध है तो हेतुमें अन्वयव्याप्तिके सिद्ध होनेसे हेतुकी केवलव्यतिरेकिता नष्ट होती है। क्योंकि वह हेतु अन्वयी भी हो गया। इसलिये वह अन्वयव्यतिरेकी कहा जायगा केवलव्यतिरेकी नहीं ॥२९॥

यदि कहें कि विपक्षमें साध्य प्रसिद्ध है तो अनिवार्य व्याघात दोष प्राप्त होगा। तात्पर्य यह है कि "निश्चितसाध्याभाववान्को विपक्ष कहते हैं" जो निश्चित साध्याभाववाला है उसमें साध्य कहाँ से प्रसिद्ध होगा?

शंका होती है कि प्रत्येक लक्षण अपने लक्ष्यको अन्यसे व्यावर्तन करनेवाला (पृथक करनेवाला) होता है। जैसे "पृथवी इतरभिन्ना गन्धवत्वात्। यन्नैवं तन्नैवं यथा जलम्।" "गन्धविशिष्ट होनेसे पृथिवी इतर जलादि द्रव्योंसे भिन्न है। जो इतरभिन्न नहीं है वह गन्धवान् नहीं है। जैसे जल।" यहाँ पर 'जो गन्धवान् है वह इतरभिन्न है।" इसप्रकारको अन्वयव्याप्ति नहीं हो सकती है। क्योंकि पृथिवीमात्र पक्ष है। इसलिये लक्षण लक्ष्यमें लक्ष्यसे

Scanned by CamScanner

मैवं यतश्च तत्सिद्धिरन्वयव्यतिरेकितः ।
गन्धवत्त्वादयं देहः पार्थिवो घटवद् यथा ॥३१॥
जगतः कारणत्वे तु लक्षणे चैकलक्ष्यके ।
लक्ष्यासाधारणाकारः शास्त्रत एव सिध्यति ॥३२॥
नावसरस्ततस्तत्र केवलव्यतिरेकिणः ।
केवलव्यतिरेकी तत् तत्त्वज्ञैर्नैव मन्यते ॥३३॥

इतरके भेदको सिद्धकरनेवाले हेतुरूप होते हैं । वे लक्षणरूपहेतु केवलव्यतिरेकी हेतुरूप होते हैं । यदि हेतुको केवलव्यतिरेकी न मानें तो लक्षणोंका इतर व्यार्तकत्व कैसे सिद्ध होगा ? ॥३०॥

उक्त प्रकारका कथन ठीक नहीं है क्योंकि लक्षणोंके अन्य-व्यावर्तकत्वकी सिद्धि तो अन्वयव्यतिरेकी हेतुसे ही हो जाती है जैसे—"अयं न जलीयो गन्धवत्वाद् यथा घटः" 'यह देह गन्धवाला होनेसे घटके समान जलीय नहीं है ।' यहाँ पर देहमें जलीयत्वके भेदको सिद्ध करनेवाला गन्धवत्व (गन्ध) अन्वयव्यतिरेकी है । यहां पर 'जो गन्धवाला है वह जलीय नहीं है। जैसे घट ।' यह अन्वयव्याप्ति है । 'जो जलीय है वह गन्धवाला नहीं है । जैसे हिम (बरफ)' यह व्यतिरेक व्याप्ति है । यहाँ पर गन्धरूप अन्वय व्यतिरेकी हेतुमें देहके पार्थिवत्वसे अतिरिक्त जलीयत्वकी व्यावर्तकता अर्थात् जलीयत्वके भेदकी साधकता है । इसलिये अन्यभेदके सिद्ध करनेकेलिये केवलव्यतिरेकी हेतु माननेकी कोई आवश्यकता नही है। क्योंकि अन्वयव्यतिरेकीहेतु-से ही अन्यभेदकी सिद्धि हो जाती है । यदि कहें कि देहादि अनेक-

स्वार्थं चाथ परार्थं चानुमानं द्विविधं मतम् ।
स्वार्थं स्वानुमितेर्हेतुः परार्थं तदिरन्मतम् ॥३४॥
भूयःप्रदर्शनात् स्वस्य व्याप्तिग्रहो भवेत् खलु ।
यत्र यत्र च धूमोऽस्ति तत्र तत्रानलोऽस्ति हि ॥३५॥

लक्ष्यवाले गन्ध आदि लक्षणरूप अन्वयव्यतिरेकीहेतुओंसे लक्ष्यमें अन्यभेदकी सिद्धि तो हो जाती है । परन्तु ब्रह्मरूप, एकलक्ष्य-वाला जगत्कारणत्वलक्षणरूपहेतु अन्वयव्यतिरेकीरूपसे लक्ष्यमें अन्य-भेदको सिद्ध नहीं कर सकता है किन्तु केवलव्यतिरेकीरूपसे ही अन्यभेदको सिद्ध कर सकता है । इसलिये केवल-व्यतिरेकी हेतु मानना ही चाहिये । इस शङ्काका समाधान किया जाता है कि— ब्रह्मरूपएकलक्ष्यवाले जगत्कारणत्वरूपलक्षणमें लक्ष्यका-असाधारणधर्मत्व शास्त्रसे ही सिद्ध होता है । अन्य अनुमानादि प्रमा-णोंसे नहीं । इसीलिये भगवान् बादरायणने " शास्त्रयोनित्वात् ।१।१।३। " इससूत्रकी रचना की है । इसलिये उक्तस्थलमें केवलव्य-तिरेकीहेतुका अवसर ही नहीं है । इसलिये तत्त्वज्ञानी लोग केवलव्यति-रेकी हेतुका स्वीकार नहीं करते हैं ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ ३३॥

अनुमानविभाग

स्वार्थानुमान और परार्थानुमान रूपसे अनुमान दो प्रकारका माना गया है । अपनी अनुमितिके हेतुको 'स्वार्थानुमान' और परानुमितिके हेतुको 'परार्थानुमान' कहते हैं ॥३४॥

बहुतवार देखनेसे " जहाँ जहाँ धूप है वहाँ वहाँ अग्नि है " इत्यादि व्याप्तिका ग्रह (ज्ञान) महानसादिमें होता है । उक्तप्रकारसे

Scanned by CamScanner

एवं महानसादौ हि व्याप्तिग्रहमुपार्ज्य च ।
पर्वतस्य समीपं हि गत्वा सन्दिह्य चानलम् ॥३६॥
पश्यंश्च पर्वते धूमं व्याप्तिमनुस्मरत्यथ ।
वह्निव्याप्यश्च यो धूमस्तद्वानयं हि पर्वतः ॥३७॥
परामर्शो भवेत् तस्मात् पर्वतो वह्निमानिति ।
जायतेऽनुमितिश्चैवं स्वार्थानुमानता मता ॥३८॥
द्विधाऽनुमानसामग्री निश्चिता विदुषांवरैः ।
भूयोदर्शनमेका हि न्यायवाक्यं परा मता ॥३९॥
प्रतिज्ञादिकपञ्चानां न्यायत्वं सम्मतं बुधैः ।

व्याप्तिज्ञानका उपार्जन करके मनुष्य पर्वतके समीपमें जाता है । और पर्वतमें अग्निका सन्देह करता है कि ' पर्वतो वह्निमान् न वा ? ' ' पर्वत अग्निमान् है कि नहीं ' ? पश्चात् पर्वतमें धूमको देखकर व्याप्तिका स्मरण करता है कि ' जो जो धूमवान् है वह वह अग्निमान् है । ' पश्चात् ' वह्निव्याप्य धूमवान् यह पर्वत है ' इस प्रकारका परामर्शरूप ज्ञान होता है । उस परामर्शसे 'पर्वत अग्निमान् है' इसप्रकारकी अनुमिति उत्पन्न होती है । इसप्रकारका अनुमान स्वार्थानुमानरूप माना गया है ॥३५॥३६॥३७॥३८॥

विद्वानों द्वारा निश्चित अनुमानकी सामग्री दो प्रकारकी है । एक भूयोदर्शनरूप (बहुतबार देखना) दूसरी न्यायवाक्यरूप ॥३९॥

न्यायवाक्य

विद्वानोंने प्रतिज्ञादि पाँच वाक्योंको ' न्याय ' माना है । उन पाँचोमें पक्षके कथनको ' प्रतिज्ञा ' कहते है यथा— ' पर्वत वह्निमान्

प्रतिज्ञासंज्ञकं तत्र पक्षप्रवचनं मतम् ॥४०॥
निदर्शनं च तत्राहुः पर्वतो वह्निमानिति ।
लिङ्गप्रवचनं हेतुर्धूमादिति निदर्शनम् ॥४१॥
दृष्टान्तवचनं यद्धि व्याप्तेश्च प्रतिपादकम् ।
तस्योदाहरणत्वं हि मन्यते तत्त्ववित्तमैः ॥४२॥
अन्वयिव्यतिरेकीति भेदाद् द्विधा मतं च तत् ।
यथा महानसं यश्च धूमवान् स च वह्निमान् ॥४३॥
यो निर्वह्निःस निर्धूमो महाह्रदो यथा तथा ।
व्याप्तहेतूपसंहारः पक्ष उपनयो मतः ॥४४ ॥
अन्वयिव्यतिरेकीति भेदादुपनयो द्विधा ।
उपनयो मतोऽयं हि धूमवानिति चादिमः ॥४५ ॥

है ' यह वाक्य । लिङ्ग (चिन्ह) के कथनको ' हेतु ' कहते हैं । यथा— ' धूमात् ' ' धूमवाला होनेसे ' यह वाक्य ॥४०॥४१॥

तत्वज्ञानीलोग व्याप्तिके प्रतिपादन करनेवाले दृष्टान्तके कथनको ' उदाहरण ' कहते हैं । अन्वयी और व्यतिरेकी भेदसे उदाहरण दो प्रकारका है । " जो धूमवान् है वह अग्निमान् है । जैसे महानस (पाकशाला) । " यह अन्वयदृष्टान्त है ॥४२॥४३॥

" जो अग्निरहित है वह धूमरहित है । जैसे महाह्रद (तालाब) । " यह व्यतिरेकदृष्टान्त है ।

पक्षमें व्याप्त हेतुके उपसंहारको 'उपनय' कहते हैं । उपनय भी दो प्रकारका होता है । अन्वयी और व्यतिरेकी । 'वह्निव्याप्य धूमवान्

Scanned by CamScanner

निर्धूमो न तथा चायं द्वितीय उपनयो मतः ।
पक्षे साध्योपसंहारो निगमनं समुदीरितम् ॥४६॥
तच्चापि द्विविधं प्रोक्तमन्वयव्यतिरेकतः ।
तस्मादनलवाँश्चायं निरग्निर्हि न चास्त्ययम् ॥४७॥
नैय्यायिका भवन्त्यत्र पञ्चावयववादिनः ।
मीमांसका वदन्त्यत्र प्रतिज्ञादित्रयं खलु ॥४८॥
तथोदाहरणं चोपनयं तु सौगताः किल ।

अयम् ' ' वैसा ही वह्निव्याप्य धूमवाला यह है ' यह 'अन्वयोपनय' है ॥४४॥४५॥

" वैसा धूमरहित यह नहीं है । " । यह ' व्यतिरेकोपनय ' है। पक्षमें साध्यके उपसंहारको ' निगमन ' कहते हैं । अन्वय और व्यतिरेक भेदसे नियमन भी दो प्रकारका कहा गया है । इसलिये ' यह अग्निमान् है ' यह ' अन्वयनिगमन ' है । इसलिये ' यह अग्निरहित नहीं है । ' यह ' व्यतिरेकनिगमन ' है ॥४६॥४७॥

इस प्रकार प्रतिज्ञा हेतु उदाहरण उपनय और निगमन यह पाँच अवयव न्यायके कहे गये । नैय्यायिकलोग पञ्चावयववादी हैं। अर्थात् नैयायिक महानुभाव अनुमानप्रयोगमें उक्त पाँचो अवयवोंको कहते हैं। मीमांसकलोग अनुमानमें प्रतिज्ञादि तीन अवयवोंको ही कहते हैं ॥४८॥

बौद्धलोग तो उदाहरण और उपनय दो अवयवोंको ही कहते हैं। आनन्दभाष्यकार भगवान् श्रीरामानन्दाचार्यजी यतिराजके अनुयायी श्रीरामानन्दीय श्रीवैष्णव महानुभावतो अनियमसे कहते हैं । जितने

वदन्त्यनियमेनाथ रामानन्दानुयायिनः ॥४९॥
पञ्चावयवसंयुक्ताः सद्धेतवोऽनुमापकाः ।
सद्धेतोः पञ्चरूपं तु पूर्वमेव निरूपितम् ॥५०॥
हेतुवद् भासमाना हि हेत्वाभासा मता बुधैः ।
ते चासिद्धविरुद्धानैकान्तिकबाधिताः खलु ॥५१॥
सार्धं सत्प्रतिपक्षेण पञ्चत्वेनान्विता मताः ।
असिद्धस्त्रिविधस्तत्राश्रयासिद्धादिभेदतः ॥५२॥
आश्रयासिद्धता पक्षासिद्धिश्चात्र मता बुधैः ।
पक्षे च पक्षतावच्छेदकस्य विरहश्च सा ॥५३॥

अवयवोंसे बोध हो जाता है उतने अवयव कहते हैं । कभी पाँच अवयव कहते हैं कभी तीन और कभी दो अवयवोंको कहते हैं ॥४९॥

पाँच अवयवोंसे युक्त सद्हेतु अनुमितिके उत्पादक होते हैं। सद्हेतुओंके पाँचरूप होते हैं । उनका निरूपण पूर्वमें ही कर दिया गया है ॥५०॥

जो वास्तवमें हेतु न हो किन्तु हेतुके समान आभासमान हों उन्हें विद्वान्लोग हेत्वाभास कहते हैं । हेत्वाभास पाँच हैं । असिद्ध विरुद्ध अनैकान्तिक बाधित और सत्प्रतिपक्ष । उनमें आश्रयासिद्धादि भेदसे असिद्धनामक हेत्वाभास तीन प्रकारका है ॥५१॥५२॥

उनमें पक्षासिद्धिको ही विद्वानोंने आश्रयासिद्धि माना है । पक्षमें पक्षताके अवच्छेदकके अभावको पक्षासिद्धि कहते हैं । तात्पर्य यह हुआ कि जिस हेतुके पक्षमें पक्षतावच्छेदक न हो वह हेतु ' आश्रयासिद्ध ' कहा जाता है । यथा ' व्योमारविन्दं सुरभि अरविन्दत्वात्

Scanned by CamScanner

सुरभि व्योमपद्मं हि पद्मत्वेन च हेतुना ।
सरःपद्मेन तुल्यं चेत्येतत् तन्निदर्शनम् ॥५४॥
पद्मे व्योमीयताऽभावात् पक्षासिद्धिर्मताऽत्र हि ।
पक्षे च हेत्वभावो हि स्वरूपासिद्धता मता ॥५५॥
सा चतुर्धा मता शुद्धासिद्ध्यादिभेदतो बुधैः ।
आद्यः शब्दो गुणश्चास्ति चाक्षुषत्वेन हेतुना ॥५६॥

सरोजारविन्दवत् । ' ' अरविन्दत्वरूपहेतुसे सरोजारविंदके समान व्योमारविंद सुगन्धवाला है । ' यहाँ पर अरविन्दत्वरूपहेतुका पक्ष व्योमारविंद है । पक्षता व्योमारविन्दमें है । यहाँ अरविन्दमें रहा हुआ व्योमीयत्वरूप धर्म पक्षताका अवच्छेदक है। अरविंदरूप पक्षमें व्योमीयत्वरूप धर्मका अभाव है क्योंकि व्योमारविन्द तो होता ही नहीं है। इसलिये पक्षासिद्धिहोनेसे उक्त अनुमानका अरविन्दत्वरूपहेतु ' आश्रयासिद्ध ' नामक हेत्वाभास है ।

पक्षमें हेतुके न रहनेपर हेतु ' स्वरूपासिद्धनामक हेत्वाभास कहा जाता है ॥५३॥५४॥५५॥

स्वरूपासिद्ध चार प्रकारका होता है । शुद्धासिद्ध भागासिद्ध विशेषणासिद्ध तथा विशेष्यासिद्ध । ' शब्दो गुणश्चाक्षुषत्वात् ' ' चाक्षुषत्ववालाहोनेसे शब्द गुण है ' इस अनुमानमें शब्द पक्ष है, गुणत्व साध्य है तथा चाक्षुषत्व हेतु है । यहाँपर चाक्षुषत्वरूप हेतु शब्दरूप पक्षमें नहीं रहता है । क्योंकि शब्द श्रवणजन्यप्रत्यक्षका विषय होने से श्रावण है । इसलिये शब्दमें श्रावणत्व रहता है चाक्षुषत्व नहीं। क्योंकि शब्द चक्षुर्जन्यप्रत्यक्षका विषय ही नहीं है । इसलिये शब्दरूप पक्षमें

भागासिद्धो मतः प्राज्ञैः शब्दादिपञ्चकं गुणः ।
रूपत्वहेतुतश्चात्र शब्दे रूपत्वशून्यता ॥५७॥
मतो विशेषणासिद्धः प्रत्यक्षश्च प्रभञ्जनः ।
रूपित्वसंयुतस्पर्शाद् रूपाभावो यतस्त्विह ॥५८॥
विशेष्यासिद्धता व्यत्यासे विशेषविशेष्ययोः ।
विशिष्टविरहो ह्यत्र विशेष्यविरहान्मतः ॥५९॥

न रहनेसे चाक्षुषत्वरूप हेतु स्वरूपासिद्धनामक हेत्वाभास है । वह शुद्धासिद्धनामक स्वरूपासिद्ध है ॥५६॥

' शब्दस्पर्शरूपरसगन्धाः गुणाः रूपत्वात् ' 'रूपत्ववाले होनेसे शब्दस्पर्शरूपरसगन्ध ये पाँचो गुणत्ववाले हैं अर्थात् गुण हैं । 'यहाँ पर शब्दादि पाँचगुण पक्ष हैं । गुणत्व साध्य है तथा रूपत्व हेतु है । यह रूपत्वरूप हेतु पक्षके एकदेशरूप शब्दस्पर्शरस और गन्ध चार गुणों में नहीं रहता है । इसलिये रूपत्वहेतु ' भागासिद्धनामक स्वरूपासिद्ध ' है ॥५७॥

' वायुः प्रत्यक्षः रूपित्वविशिष्टस्पर्शात् ' यहाँ पर वायु पक्ष है । प्रत्यक्षत्व साध्य है । तथा रूपविशिष्टस्पर्श हेतु है । यहाँ पर वायुमें यद्यपि स्पर्श रहता है । तथापि वायुमें रूपविशिष्टस्पर्शाभाव कहा जा सकता है क्योंकि वायुमें रूप नहीं रहता है । इसलिये वायुमें विशेषणाभावप्रयुक्त रूपविशिष्टस्पर्शाभावके होनेसे रूपविशिष्टस्पर्शहेतु विशेषणासिद्धनामक स्वरूपासिद्ध हेत्वाभास है ॥५८॥

उक्त अनुमानमें ही विशेषणको विशेष्य और विशेष्यको विशेषण करनेपर विशेष्यासिद्धनामक स्वरूपासिद्ध होता है । यथा 'वायुः प्रत्यक्षः

Scanned by CamScanner

व्याप्यत्वासिद्धता चाथ द्विविधा प्राज्ञसम्मता ।
प्रमाणाभावतश्चाद्या सद्व्याप्तिग्राहकस्यहि ॥६०॥
विमतं क्षणिकं सत्वात् साध्यसाधनयोरिह ।
अस्थिरत्वात् प्रमाणं न सहचारस्य दर्शनम् ॥६१॥
हेतावुपाधिसद्भावाद् व्याप्यत्वासिद्धतेतरा ।
पर्वतो धूमवान् वह्नेर्हेतुः सोपाधिकोऽत्र हि ॥६२॥

स्पर्शविशिष्टरूपात् ' वायु प्रत्यक्ष है स्पर्शविशिष्ट रूपवाला होनेसे ।' यहाँ पर वायुरूप पक्षमें यद्यपि हेतुका स्पर्शरूप विशेषण रहता है तथापि हेतुके विशेष्यरूपगुणके न होनेसे वायुरूप पक्षमें विशेष्याभाव-प्रयुक्त स्पर्शविशिष्टरूपाभाव कहा जा सकता है । इसलिये हेतुके पक्षमें न रहनेसे उक्त हेतु विशेष्यासिद्धनामक स्वरूपासिद्ध है ॥५९॥

व्याप्यत्वासिद्ध को विद्वानोंने दो प्रकारका माना है । व्याप्ति-ग्राहक प्रमाणके अभावसे जो व्याप्यत्वासिद्ध होता है वह प्रथम है ॥६०॥

जैसे बौद्धलोग अनुमान करते हैं कि ' विमतं क्षणिकं सत्वात् ' विवादग्रस्तपदार्थ सत् होनेसे क्षणिक है । यहाँपर बौद्धोंके मतमें क्षणिकत्वरूपसाध्य और सत्वरूपहेतु दोनोंके स्थिर न होनेसे साध्य और साधनके साहचर्य (व्याप्ति) के ग्राहक प्रमाणके न होनेसे सत्व-रूप हेतु ' व्याप्यत्वासिद्ध ' है ॥६१॥

हेतुमें उपाधिके होनेसे जो व्याप्यत्वासिद्ध होता है वह दूसरे प्रका-रका व्याप्यत्वासिद्ध है । अर्थात् सोपाधिक (उपाधिवाले) हेतुको

साध्यस्य व्यापकत्वाच्च साधनाव्यापकत्वतः ।
आर्द्रेन्धनस्य संयोग उपाधिः साधने मतः ॥ ६३ ॥
आर्द्रेन्धनस्य संयोगो यत्र धूमोऽस्ति तत्र हि ।
साध्यव्यापकता· तस्माद् विद्वद्भिस्तत्र सम्मता ॥६४॥
वह्न्याधारे त्वयःपिण्डे तस्याभावो यतस्ततः ।
साधनाव्यापकत्वं च मतं तत्र विचक्षणैः ॥६५॥
सोपाधिकतया वह्नेर्व्याप्यत्वासिद्धताऽत्र हि ।
साध्याभावेन यद् व्याप्तं विरुद्धं साधनं हि तत् ॥६६॥

' व्याप्यत्वासिद्ध ' कहते हैं । यथा— ' पर्वतो धूमवान् वह्नेः ' ' वह्निवाला होनेसे पर्वत धूमवान् है । ' इस अनुमानमें वह्निरूप हेतु सोपाधिक (उपाधिवाला) है ॥६२॥

जो साध्यका व्यापक हो और साधनका अव्यापक हो उसे 'उपाधि' कहते हैं । उक्त अनुमान प्रयोगके वह्निरूप साधनमें आर्द्रेन्धन-संयोग उपाधि है ॥ ६३ ॥

'जहां धूम है वहाँ आर्द्रेन्धनसंयोग(गीली लकड़ीका संयोग) है ।' इसलिये आर्द्रेन्धनसंयोगको उक्तानुमानके धूमरूप साध्यका व्यापक माना है ॥ ६३ ॥

तप्त लोहेके गोलेमें अग्निरूप हेतु है परन्तु आर्द्रेन्धनसंयोग नहीं है । इसलिये उक्तानुमानके अग्निरूप हेतुका व्यापक आर्द्रेन्धनसंयोग नहीं है ॥ ६५ ॥

इसलिये साध्यके व्यापक होनेसे तथा साधनके अव्यापक होनेसे उक्तानुमानके वह्निरूप हेतुमें आर्द्रेन्धनसंयोगरूप उपाधि है ।

Scanned by CamScanner

कालवत् प्रकृतिर्नित्या कृतकत्वेन हेतुना ।
अत्र चानित्यताव्याप्तं विरुद्धं साधनं मतम् ॥६७॥
व्यभिचारी च हेतुर्हि मतोऽनैकान्तिको बुधैः ।
स्वस्थानातिक्रमो ज्ञेयो हेतोस्तु व्यभिचारिता ॥६८॥
द्विधाऽनैकान्तिको ज्ञेयः साधारणादिभेदतः ।

सोपाधिक होनेसे वह्निरूप हेतु व्याप्यत्वासिद्धनामक हेत्वाभास है ।

साध्याभावसे व्याप्त साधन (हेतु) को 'विरुद्ध' कहते हैं ॥ ६६ ॥

'प्रकृतिर्नित्या कृतकत्वात्, 'कृतक (कृतिविषय=निर्मित) होनेसे कालकेसदृश प्रकृति नित्य है । इस अनुमानका साध्य है नित्यत्व । साध्याभाव है नित्यत्वाभाव अर्थात् अनित्यत्व । इस अनुमानका कृतकत्वरूप हेतु अनित्यत्वरूप साध्याभावसे व्याप्त है क्योंकि जहां कृतकत्व रहता है वहां अनित्यत्व अवश्य ही रहता है । इसलिये यहां पर कृतकत्वरूप हेतु विरुद्धनामक हेत्वाभास है ॥ ६७ ॥

अनैकान्तिक

व्यभिचारी हेतुको 'अनैकान्तिक' कहते हैं । स्वस्थानातिक्रमणको 'व्यभिचार' कहते हैं । हेतुके स्थान पक्ष और सपक्ष हैं । यदि हेतु विपक्षमें रहे तो उसका साध्यसे व्यभिचार (असहचार) होता है । यदि हेतु विपक्षमें न रहकर पक्षमात्रमें ही रहे तो भी उसका साध्यसे व्यभिचार होता है ॥६८॥

अनैकान्तिक अर्थात् सव्यभिचार नामक हेत्वाभास साधारण और

वर्तमानो विपक्षेऽपि हेतुः साधारणो मतः ॥६९॥
प्रमेयत्वाच्च हेतोर्हि वह्निमान् पर्वतोऽत्र हि ।
ह्रदेऽपि वर्तमानत्वात् साधने व्यभिचारिता ॥७०॥
अथासाधारणो ज्ञेयः पक्षमात्रस्थसाधनम् ।
गन्धवत्वाच्च हेतोर्हि नित्या तु वसुधा मता ॥७१॥

असाधारण भेदसे दो प्रकारका है । जो हेतु विपक्षमें भी रहे अर्थात् जो हेतु पक्ष सपक्ष और विपक्ष तीनोंमें रहे वह साधारणनामक अनैकान्तिक है ॥६९॥

'पर्वतो वह्निमान् प्रमेयत्वात्' 'प्रमेयत्व (प्रमाविषयत्व) रूप हेतुवाला होनेसे पर्वत अग्निवाला है ।' इस अनुमानमें पर्वत पक्ष है महानस सपक्ष है तथा ह्रद (सरोवर) विपक्ष है । इस अनुमानका प्रमेयत्वरूप हेतु सरोवररूप विपक्षमें भी रहता है । इसलिये वह अग्निरूप साध्यका व्यभिचारी (असहचारी) है । क्योंकि सरोवरमें अग्नि नहीं रहती है परन्तु प्रमेयत्वरूप हेतु रहता है ॥७०॥

जो हेतु पक्षमात्रमें रहे वह 'असाधारण' अनैकान्तिक कहा जाता है । क्योंकि सपक्षमें न रहनेसे वह भी साध्यका व्यभिचारी है। 'वसुधा नित्या गन्धवत्त्वात्' 'गन्धवाली होनेसे पृथिवी नित्य है ।' इस अनुमानमें पक्ष पृथिवी है तथा सपक्ष आत्मा आदि हैं । यहाँपर गन्धरूपहेतु पक्षरूप पृथिवीमात्रमें ही रहता है । इसलिये वह असाधारण नामक अनैकान्तिक है ।

बाधित

जिस हेतुके साध्यका अभाव प्रबल प्रमाणसे पक्षमें ही निश्चित

Scanned by CamScanner

वसुधामात्रवृत्तित्वाद् गन्धस्य व्यभिचारिता ।
प्रबलेन प्रमाणेन पक्षे च साध्यशून्यता ॥७२॥
निश्चिता यस्य हेतोः स बाधितत्वेन सम्मतः ।
महाह्रदोऽग्निमान् धूमादत्र धूमो हि बाधितः॥७३॥
हेत्वन्तरं च यद्धेतोः साध्याभावस्य साधकम् ।
विद्वद्भिः कथितः सोऽत्र सत्प्रतिपक्षसंज्ञकः ॥७४॥
नित्यधर्मविहीनत्वादनित्य ईश्वरो यथा ।
अनित्यधर्मशून्यत्वादीशस्य नित्यता यतः ॥७५॥

हो वह 'बाधित' कहा जाता है । यहाँपर यह ध्यानमें रखने योग्य है कि प्रत्यक्ष प्रमाण अनुमान प्रमाण से प्रबल होता है और शब्दप्रमाण प्रत्यक्ष और अनुमान दोनोंसे प्रबल होता है । 'महाह्रदोऽग्निमान् धूमात्' 'धूमवाला होनेसे सरोवर अग्निमान् है ।' यहाँ प्रत्यक्षप्रमाणसे ही सरोवरमें धूमरूप हेतु के साध्यरूप अग्नि के अभावका निश्चय है । इसलिये इस अनुमान का धूमरूप हेतु बाधितनामक हेत्वाभास है । बाधितको 'कालात्ययापदिष्ट' भी कहते हैं ॥७१॥७२॥७३॥

सत्प्रतिपक्ष

जिस हेतुके साध्याभावका साधक हेत्वन्तर (अन्यहेतु) हो उसे 'सत्प्रतिपक्ष' कहते हैं । सत्प्रतिपक्षको 'प्रकरणसम' भी कहते हैं ॥७४॥

'ईश्वरोऽनित्यो नित्यधर्मविहीनत्वात् ।' 'ईश्वर नित्यधर्मरहित होनेसे अनित्य है ।' 'ईश्वरो नित्योऽनित्यधर्मरहितत्वात्' 'ईश्वर

अतिदेशात्मकस्याथ वाक्यस्य स्मरणेन यत् ।
सहकृतं च गोतुल्यपिण्डज्ञानं तदेव हि ॥७६॥
उपमानतयाऽऽम्नातं न्यायशास्त्रानुयायिभिः ।
गोतुल्यो गवयश्चाश्वो धेनुवद् द्विशफो न हि ॥७७॥
दीर्घग्रीवः प्रलम्बोष्ठः कण्टकाशी क्रमेलकः ।
इत्यतिदेशवाक्यस्य त्रिविधत्वेन हेतुना ॥७८॥

अनित्यधर्मरहित होनेसे नित्य है ।' यहाँपर प्रथम अनुमानका नित्यधर्मविहीनत्वरूप हेतु सत्प्रतिपक्षनामक हेत्वाभास है । क्योंकि उसके साध्यरूप ईश्वरानित्यत्वके अभावरूप ईश्वरनित्यत्वका साधक अनित्यधर्मरहितत्वरूप हेतु विद्यमान है ॥७५॥

उपमानादिका अन्तर्भाव

नैयायिक महानुभाव अतिदेशवाक्यके स्मरणसे सहकृत गोतुल्यपिण्डके ज्ञानको ही उपमान कहते हैं । अतिदेशवाक्य तीन प्रकारके हैं । १–गोतुल्य गवय (नीलगाय) होता है । २–घोड़ा गोसदृश द्विशफ (दोखुर) वाला नहीं होता है । ३–ऊँट लम्बी गर्दनवाला लटकते ओठवाला तथा कण्टक खानेवाला होता है । इस प्रकार अतिदेशवाक्यके तीन प्रकारका होनेसे साधर्म्यादिके भेदसे उपमान भी तीन प्रकारका होता है । प्रथम वाक्यसे साधर्म्योपमान द्वितीयवाक्यसे वैधर्म्योपमान और तृतीयवाक्यसे असाधारणधर्मोपमान होता है ।

स्मृतिरूप होनेसे व्याप्तिज्ञानापेक्ष होनेसे तथा वाक्यसे उत्पन्न होनेसे उपमानका प्रत्यक्षमें अनुमानमें तथा शब्दमें अन्तर्भाव होता है । इसलिये बुद्धिमान् लोग उपमानको प्रत्यक्ष अनुमान तथा शब्द इन

Scanned by CamScanner

उपमानं त्रिधा ज्ञेयं साधर्म्यादिविभेदतः ।
स्मृतित्वाद् व्याप्तिबोधस्यापेक्षणाद् वाक्यजत्वतः ॥७९॥
प्रत्यक्षे चानुमानेऽन्तर्भावः शब्दे च तस्य हि ।
उपमानं न तस्माद्धि मानान्तरं मतं बुधैः ॥८०॥
अर्थापत्तिः किलार्थस्य चापत्तिर्हि यतस्तु तत् ।
दिवसे भोजनाकर्तुः पीनत्वदर्शने यथा ॥८१॥
तस्मादनुपपन्नाद्धि कल्प्यते रात्रिभोजनम् ।
साऽर्थापत्तिस्तु विज्ञेया ह्यनुमानं न चेतरत् ॥८२॥

तीन प्रमाणोंसे अतिरिक्त प्रमाण रूपसे स्वीकार नहीं करते हैं ॥७६॥७७॥७८॥७९॥८०॥

जिससे अर्थका आक्षेप किया जाता है उसे 'अर्थापत्ति' कहते हैं। जैसे किसीने कहा कि " पीनोऽयं देवदत्तः दिवा न भुंक्ते " 'यह स्थूल देवदत्त दिनको नहीं खाता है।' तो दिनमें भोजन न करनेवाले देवदत्तका दृष्टिगोचर हुआ पीनत्व (स्थूलत्व) अनुपपन्न होता है। क्योंकि भोजनके विना कोई स्थूल नहीं हो सकता है। दिनमें न भोजन करनेवाले देवदेत्तके उस अनुपपन्न (असिद्ध) हुए पीनत्वसे देवदत्तके रात्रिभोजनका आक्षेप होता है कि " दिनमें नहीं भोजन करनेवाला स्थूल देवदत्त रात्रिमें भोजन अवश्य करता होगा " इसे अर्थापत्तिनामक प्रमाण कहते हैं। इसे मीमांसक लोग प्रत्यक्ष अनुमान तथा शब्द नामक तीन प्रमाणोंसे अतिरिक्त मानते हैं। परन्तु यह अर्थापत्ति अतिरिक्त प्रमाण नहीं है किन्तु अनुमान प्रमाण ही है। इसका कारण यह है कि अग्निके विना धूमकी अनुपपत्तिके देखीजानेसे

उपपादकता यस्माद् व्यापकस्य विनिश्चिता ।
अग्निं विना हि धूमस्यानुपपत्तेश्च दर्शनात् ॥८३॥
व्याप्यादनुपपन्नाच्च पीनत्वाद् रात्रिभोजनम् ।
सिध्यति व्यापकं भोक्तर्यनुमानं हि सा ततः ॥८४॥
शते पञ्चाशदित्यस्य सम्भवस्यानुमानता ।
शतरूप्यकवत्त्वेन पञ्चाशत साध्यते यतः ॥८५॥
ऐतिह्यस्याप्तमूलस्य शब्दप्रमाणता मता ।

से व्यापककी उपपादकता निश्चित है। इसलिये अनुपन्न हुए व्याप्यरूप पीनत्वसे भोक्तारूप देवदत्तमें रात्रिभोजनरूप व्यापक सिद्ध होता है। यहाँ पर अनुमानका प्रयोग इस प्रकारसे होसकता है कि—" देवदत्तो रात्रिभोक्ता दिवसेऽभोक्तृत्वे सति पीनत्वात् " 'दिनमें नहीं खाने पर भी स्थूल होनेसे देवदत्त रात्रिमें भोजन करनेवाला है।' इसलिये अर्थापत्ति पृथक् प्रमाण नहीं है किन्तु अनुमान प्रमाण ही है ॥८१॥८२॥८३॥८४॥

शतरूपयेरूप हेतुसे पचास रूपये सिद्ध किये जाते हैं। इसलिये 'शते पञ्चाशत्' (सौ रूपये होनेसे पचास रूपये सम्भवित हैं।) इस प्रकारका सम्भवनामक प्रमाण भी अनुमान ही है। यहाँ पर अनुमानका प्रयोग किया जाता है कि— " देवदत्तः पञ्चाशद्रूप्यकवान् शतरूप्यकवत्त्वात् । " (सौ रूपयेवाला होनेसे देवदत्त पचासरूपयोंवाला है) इसलिये सम्भवको अनुमानप्रमाणसे अतिरिक्त नहीं मानना चाहिये ॥८५॥

पौराणिक लोग ऐतिह्यनामक अतिरिक्त प्रमाण मानते हैं। ऐति-

Scanned by CamScanner

अनाप्ताज्ञातमूलत्वे तस्याप्रमाणतैव हि ॥८६॥
तर्कश्च व्यापकारोपो व्याप्यारोपेण सम्मतः ।
शङ्कां स व्यभिचारस्य निवर्तयति यत् ततः॥८७॥

ह्यका अर्थ है परम्परासे उपदिष्ट । 'इस बटके वृक्षमें यक्ष रहता है।' यह बात ऐतिह्य प्रमाणसे जानी जाती है । ऐतिह्य दो प्रकारका होता है । आप्तमूलक और अनाप्तमूलक। इन दोनोंमें आप्तमूलक ऐतिह्यका शब्दप्रमाणमें अन्तर्भाव होता है । अनाप्तमूलक ऐतिह्य तो संशयग्रस्त होनेसे अप्रमाणरूप ही है । इसलिये ऐतिह्यनामक पृथक् प्रमाण माननेकी आवश्यकता नहीं है ॥८६॥

व्याप्यके आरोपसे व्यापकके आरोपको 'तर्क' कहते हैं । "यदि अग्नि न होगी तो धूम भी न होगा" यह तर्कका स्वरूप है। हेतुके व्यभिचारकी शङ्काका निवारण तर्कसे होता है । जैसे कहा कि 'पर्वतो अग्निमान् धूमात्' इस अनुमान पर यदि कोई कहे कि पर्वतमें धूम भले रहे । वहाँ पर धूम होनेसे अग्नि क्यों मानना चाहिये ? तो वहाँ पर तर्क किया जाता है कि इस प्रकार मानने पर धूम और अग्निका सहचार नहीं किन्तु व्यभिचार सिद्ध होता है । यदि धूमको अग्निका व्यभिचारी माना जायगा तो 'धूम अग्निसे जन्य है' यह नहीं मानना होगा । जब धूम अग्निजन्य नहीं है तो मशकनिवारणार्थ धूमकरनेके लिये अग्निकी आवश्यकता क्यों होती है ? इसलिये मानना होगा कि 'धूम अग्निजन्य है' । यदि धूम अग्निसे उत्पन्न होता है तो धूम अग्निका सहचारी है व्यभिचारी नहीं। और यदि धूम अग्निका सहचारी है तो पर्वतमें धूम होनेसे पर्वत अग्निवाला भी है । इस प्रकार

अनुमानाङ्गता तत्रास्त्यनुमानं ततश्च सः ।
तर्कः पञ्चविधः प्रोक्त आत्माश्रयादिभेदतः ॥८८॥
व्यवहारः कथा ज्ञेया वादिनोश्च विरुद्धयोः ।
वादजल्पवितण्डात्वभेदात् कथा त्रिधा मता ॥८९॥
वीतरागकथा वादः पञ्चाङ्गः स उदीरितः ।
स्वपक्षसाधनं तत्र परपक्षे च दूषणम् ॥९०॥

तर्कसे व्यभिचारकी शंका निवृत्त होती है ॥८७॥

तर्क अनुमानका अङ्ग है । अतः तर्क का अन्तर्भाव अनुमानमें होता है । आत्माश्रय अन्योन्याश्रय चक्रक अनवस्था तथा तदन्यबाधितार्थप्रसङ्ग भेदसे तर्क पाँच प्रकारका होता है। स्वसिद्धि आदिमें स्वकी अपेक्षा होनेपर 'आत्माश्रय' होता है । दो वस्तुओंकी सिद्धिमें परस्परापेक्षा होनेपर 'अन्योन्याश्रय' होता है । तीन वस्तुओंकी सिद्धिमें यदि प्रथम द्वितीयकी तथा द्वितीय तृतीयकी तथा तृतीय प्रथमकी अपेक्षा करे तो 'चक्रक' होती है। इसीप्रकार चार पाँच आदि वस्तुओंकी सिद्धिमें भी जानना चाहिये । अविश्रान्त परम्पराके आरोपको 'अनवस्था' कहते हैं । कार्यकारण-भङ्गादिको 'तदन्यबाधितार्थप्रसङ्ग' कहते हैं । जैसे ऊपर धूम और अग्निके व्यभिचारप्रसङ्गमें कहा गया है ॥८८॥

विरुद्धवादियोंके वाग्व्यवहारको 'कथा' कहते हैं । वाद जल्प और वितण्डाके भेदसे कथा तीन प्रकारकी मानी गई है ॥८९॥

रागरहित वादियोंकी कथाको 'वाद' कहते हैं । वादके पाँच अङ्ग होते हैं । स्वपक्षसाधन परपक्षमें दूषण स्वपक्षसाधनका समर्थन परपक्षमें दिये हुए दूषणका समर्थन तथा शब्ददोषका वर्जन॥९०॥९१॥

Scanned by CamScanner

समर्थ्य साधनं चाथ दूषणस्य समर्थनम् ।
वर्जनं शब्ददोषस्य वादाङ्गपञ्चकं मतम् ॥९१॥
वादे प्रमाणतर्कौ हि साधनत्वेन सम्मतौ ।
वीतरागोऽधिकारी च तत्वज्ञानं प्रयोजनम् ॥९२॥
विजिगीषुकथा जल्पः पक्षद्वयस्य साधिका ।
परोक्तौ दोषदानं हि स्वपक्षस्थापनं विना ॥९३॥
वितण्डा सम्मता चाथ शास्त्रज्ञैर्हि विचक्षणैः ।
अनुमानाङ्गता प्राज्ञैः कथासु स्वीकृता खलु ॥९४॥
अविवक्षितशब्दार्थारोपेण दूषणं छलम् ।
छलमप्यनुमानाङ्गमङ्गीकृतं विचक्षणैः ॥९५॥

प्रमाण और तर्क दोनों ही वादमें साधनरूपसे माने गये हैं। वादमें वीतराग पुरुषको अधिकारी तथा तत्वज्ञानको प्रयोजन माना गया है ॥९२॥

पक्षद्वयको सिद्ध करनेवाली विजिगीषु (जीतनेकी इच्छावाले) पुरुषकी कथा को 'जल्प' कहते हैं।

स्वपक्षस्थापनरहित परोक्तिमें दोष देनेको शास्त्रवेत्ता लोग 'वितण्डा' कहते हैं। उक्त तीनो प्रकारकी कथाओंको अनुमान-का अङ्ग माना गया है ॥९३॥९४॥

अविवक्षित शब्दार्थका आरोप करके दूषण देनेको 'छल' कहते हैं। जैसे किसीने कहा कि 'नवकम्बलोऽयं देवदत्तः' (यह देवदत्त नवीन कम्बलवाला है।) यहाँ पर नवशब्द नूतन अर्थमें प्रयुक्त है। यदि कोई इसका नवसंख्या अर्थ करके कहे कि

स्वव्यापि दूषणं जातिः सा वाऽसदुत्तरं यथा ।
महानसस्य साधर्म्याद् धूमवत्त्वाद्धि पर्वतः ॥९६॥
वह्निमान् सम्मतस्तर्हि वह्निशून्यः कथं न सः ।
महाह्रदस्य साधर्म्यं द्रव्यत्वं तत्र चास्ति यत् ॥९७॥
चतुर्विंशतिधा भेदा जातेश्च समुदाहृताः ।
अनुमानाङ्गता जातौ मता वेदान्तवेदिभिः ॥९८॥

'देवदत्त कहाँ नव कम्बलवाला है वह तो एक ही कम्बलवाला है।' तो यह कथन छल कहा जायगा। विद्वान्‌पुरुषोंने छलको भी अनुमानका अङ्ग माना है ॥९५॥

जो दोष अपनेको (दोषदेनेवालेको) भी लगे वह 'जाति' कहा जाता है। अथवा असत् उत्तरको 'जाति' कहते हैं। "पर्वतोऽग्निमान् धूमात्। यथा महानसम्।" इसस्थलमें यदि कोई कहे कि "महानसका साधर्म्य धूम पर्वतमें है। इसलिये पर्वतको अग्निमान् मानते हो तो मैं कहता हूँ कि पर्वतमें महाह्रदका साधर्म्य द्रव्यत्व है। इसलिये पर्वतको महाह्रदके समान अग्निशून्य भी मानो।" तो उसका इस प्रकारका कथन 'जाति' माना जायगा। क्योंकि दूसरा भी उक्तकथनकरनेवालेसे कहेगा कि जैसे आप महाह्रदके द्रव्यत्वरूप साधर्म्यसे पर्वतको महाह्रदके समान अग्निरहित मानते हैं वैसे मैं भी कहूँगा कि आप महानसके साधर्म्यरूप धूमसे पर्वतको महानसके सदृश अग्निमान् ही मानें ॥९६॥९७॥

जातिके चौवीस भेद कहे गये हैं।

१— साधर्म्यसे स्थापनहेतुके दूषक उत्तरको 'साधर्म्यसमा'

Scanned by CamScanner

कहते हैं। यथा- घटके साधर्म्य कृतकत्वसे शब्द अनित्य है अथवा आकाशके वैधर्म्यसे शब्द अनित्य है। यहाँ पर यदि कहा जाय कि "अनित्य घटके साधर्म्यसे शब्द अनित्य है अथवा आकाशके वैधर्म्यसे शब्द अनित्य है तो नित्य आकाशके साधर्म्य अमूर्तत्वसे शब्द नित्य ही क्यों न माना जाय ?" तो वह उत्तर 'साधर्म्यसमा' जाति होगा।

२—वैधर्म्यसे दूषण देनेवाले उत्तरको 'वैधर्म्यसमा' कहते हैं। यथा उक्त स्थलमें ही "अनित्यघटवैधर्म्य अमूर्त्तत्वरूप हेतुसे शब्द नित्य ही क्यों न माना जाय ? घटके साधर्म्यसे शब्द अनित्य तो है परन्तु घटवैधर्म्यसे शब्द नित्य नहीं है। इस कथनमें कोई नियामक नहीं है।" इस प्रकार कहा जाय तो वह वैधर्म्यसमा जाति होगा।

३—परोक्त साधनसे ही उस साधनके अव्यापक धर्मके पक्षमें सिद्ध करनेको 'उत्कर्षसमा' कहते हैं। यथा—उक्त स्थलमें ही "यदि कृतक होनेसे शब्द अनित्य है तो उसी हेतुसे वह सावयवभी है। 'कृतकत्वहेतुसे शब्दमें अनित्यत्व ही सिद्ध होता है सावयवत्व नहीं' इस कथनमें कोई नियामक नहीं है।" यदि इस प्रकार कहा जाय तो वह 'उत्कर्षसमानामक जाति' कहा जायगा।

४—वादीके कहे हुए दृष्टान्तसाधर्म्यसे वादीके इष्ट धर्मान्तरके अभावके साधनेको 'अपकर्षसमा' कहते हैं। जैसे उक्तस्थलमें ही कहें कि यदि कृतकत्वहेतुसे शब्द अनित्य है तो उसी हेतुसे वह घटवत् अश्रावण भी सिद्ध होगा।

५ वर्ण्य (स्थापनीय) दृष्टान्तधर्मको पक्षमें सिद्ध करनेको 'वर्ण्यसमा' कहते हैं। यथा—'आत्मा सक्रियः क्रियाजनकगुणवत्त्वात्। लोष्ठवत्। (क्रियाजनकगुणवाला होनेसे लोष्ठके समान आत्मा सक्रिय

है, इसपर यदि कहें कि "लोष्ठ में (मिट्टीके ढेलेमें) क्रियाजनक गुण वायुका नोदनसंयोग है। इसलिये लोष्ठमें सक्रियत्व है। आत्माको लोष्ठके समान सक्रिय मानेंगे तो उसमें क्रियाजनक नोदनसंयोग भी मानना पडेगा।" यह उत्तर वर्ण्यसमानामक जातिरूप हुआ।

६—पक्षमें साध्य और साधन के धर्मों की तुल्यताके सिद्ध करनेको 'अवर्ण्यसमा' कहते हैं। यथा—उक्त स्थलमें ही—लोष्ठमें वर्तमान क्रियाजनकनोदनसंयोग आत्मामें असिद्ध है तो भी जैसे असिद्ध क्रियाजनकनोदनसंयोगसे आत्मामें सक्रियत्व सिद्ध करते हो। उसी प्रकार आत्मामें असिद्ध सक्रियत्वसे क्रियाजनकनोदनसंयोग भी क्यों नहीं सिद्ध करते हो ?

७—दृष्टान्तमें विकल्प करके दार्ष्टान्तमें विकल्पकथन करनेको 'विकल्पसमा' कहते हैं। जैसे पूर्वोक्त अनुमानमें ही क्रियाजनकगुणवाले दो हैं। लोष्ठ और वायु। लोष्ठ गुरुत्ववाला है और वायु लघुत्ववाला है। उसी प्रकार दार्ष्टान्त भी दो प्रकारके ही मानने चाहिये। इसलिये क्रियाजनक गुणवाला लोष्ठ सक्रिय है किन्तु क्रियाजनकगुणवाला आत्मा निष्क्रिय है। "दृष्टान्तमें विकल्प मानना चाहिये किन्तु दार्ष्टान्तमें विकल्प न मानना चाहिये।" इस कथन में कोई भी नियामक नहीं है।

८— दृष्टान्तको पक्षके समान कहनेको 'साध्यसमा' कहते हैं। साध्यसमा शब्दमें 'साध्यते अस्मिन् इति साध्यम्' (जिसमें सिद्ध किया जाय उसे साध्य कहते हैं।) इस व्युत्पित्तके बलसे साध्यशब्दका अर्थ पक्ष है। इसलिये पूर्वोक्त अनुमानमें यदि कहा जायकि—जैसा

Scanned by CamScanner

लोष्ठ है वैसा ही आत्मा है। तो इससे यह सिद्ध हुआ कि जैसा आत्मा है वैसा ही लोष्ठ है। तो जैसे लोष्ठसाधर्म्यसे आत्मामें सक्रियत्वको सिद्ध किया जाता है। वैसे ही आत्मसाधर्म्यसे लोष्ठमें भी सक्रियत्व सिद्ध करना चाहिये। नहीं तो 'आत्मा लोष्ठसदृश है' यह नहीं कहना चाहिये। 'आत्मा लोष्ठसदृश है किन्तु लोष्ठ आत्मसदृश नहीं है।' इस कथनमें कोई नियामक नहीं है।

९—प्राप्तिद्वारा साध्यसिद्ध करनेको 'प्राप्तिसमा' कहते हैं। यहाँपर साध्यके अधिकरणमें वर्त्तमान होनेको प्राप्ति कहते हैं। यथा पूर्वोक्त अनुमानमें ही क्रियाजनकगुणरूप हेतु पक्षमें साध्यके साथ रहकर ही सक्रियत्वरूप साध्यका साधक होता है। इस पर यदि कहा जायकि तब तो कोई विशेषता न होनेसे पक्षमें हेतुके साथ वर्त्तमान सक्रियत्वरूप साध्य ही क्रियाजनकगुणको सिद्ध क्यों न करे?

१०— अप्राप्तिद्वारा प्रत्यवस्थानको (साध्यसिद्धिकरनेको) 'अप्राप्तिसमा' कहते हैं। जैसे उक्त अनुमानमें ही प्राप्तिसमारूप दोष होनेसे किसी अप्राप्त हेतुको साध्यका साधक कहना चाहिये। इस पर कहा जा सकता है कि यदि अप्राप्त अर्थात् साध्यके अधिकरणमें नहीं रहने वाला हेतु भी यदि साध्यका साधक बन सकता है तो फिर अविशेष होनेसे वही साध्याभावका साधक भी क्यों न होगा?

११— साधनपरम्पराविषयक प्रश्नको 'प्रसङ्गसमा कहते हैं। जैसे यदि कहा जाय कि आत्माके सक्रियत्वमें क्रियाजनकगुणवत्त्व हेतु है। तो प्रश्न किया जाय कि क्रियाजनकगुणवत्त्व होनेमें क्या हेतु है? क्योंकि हेतु बिना किसीकी सिद्धि नहीं होती है। यदि कोई हेतु

कहा जाय तो फिर भी प्रश्न हो सकता है कि उस हेतुके होनेमें क्या हेतु है?

१२— अन्यदृष्टान्तसे साध्याभावके सिद्ध करनेको 'प्रतिदृष्टान्तसमा' कहते हैं। जैसे उक्त स्थलमें ही सक्रिय लोष्टदृष्टान्तसे पूर्वोक्त हेतुद्वारा आत्मामें सक्रियत्व सिद्ध करते हैं तो निष्क्रिय आकाश दृष्टान्तसे उसी हेतु द्वारा आत्मामें निष्क्रियत्व ही क्योंकि न सिद्ध किया जाय? ऐसा कोई भी नियामक नहीं है कि लोष्ठदृष्टान्तसे सक्रियत्व सिद्ध किया जाय किन्तु आकाशदृष्टान्तसे अक्रियत्व न सिद्ध किया जाय।

१३ अनुत्पत्तिसे प्रत्यवस्थित होनेको 'अनुत्पत्तिसमा' कहते हैं। यथा-शब्द अनित्य है प्रयत्नका अनुविधायी होनेसे। घटके समान। इसपर यदि कहा जाय कि उत्पत्तिके प्रथम अनुत्पन्न शब्दमें प्रयत्नानुविधायित्व नहीं है। इसलिये प्रयत्नानुविधायित्वके अभावसे शब्दमें नित्यत्य प्राप्त होता है और नित्य पदार्थकी उत्पत्ति नहीं होती है। इसलिये 'शब्द अनित्य है' यह कथन उचित नहीं है।

१४ साधारण धर्मके प्रदर्शनद्वारा संशयोद्भावनको 'संशयसमा' कहते हैं। उक्त स्थलमें ही यदि कहा जाय कि—जैसे शब्दमें अनित्य घटका साधर्म्य है उसी प्रकार शब्दमें नित्यशब्दत्वका साधर्म्य श्रवणजन्यप्रत्यक्षविषयत्व भी है। इसलिये एक कोटिके नियामकके न होने से संशय होता है कि शब्द घटके सदृश अनित्य है अथवा शब्दत्वके सदृश नित्य है?

१५—वादीसे प्रयोग किये हुए साधनके साध्याभावके साधक

अन्य साधनके उद्भावनको 'प्रकरणसमा' कहते हैं। जैसे वादीने कहा कि 'शब्द अनित्य है कृतकत्व होनेसे' तो इसपर यदि उत्तर दिया जाय कि—यह ठीक नहीं है क्योंकि अनित्यत्वरूप साध्यके अभावरूप नित्यत्वको सिद्ध करनेवाले श्रावणत्वरूप हेतुसे यहाँपर बाध होता है।

१६—वादीके कहे हुए साधनमें तीनों कालमें साधनत्वका असम्भव है। इसलिये वह साधन नहीं किन्तु असाधन है। इस प्रकारके कथनको 'अहेतुसमा' कहते हैं। जैसे 'शब्दोऽनित्यः कार्यत्वाद् घटवत्' (घटके सदृश कार्यत्वहेतुसे शब्द अनित्य है।) यहाँ पर यदि कहा जाय कि यह कार्यत्वरूप हेतु अनित्यत्वरूप साध्यका पूर्वकालवर्ती है? कि उत्तरकालवर्ती है? अथवा एककालवर्ती है? प्रथमपक्षमें पूर्वकालमें अनित्यत्व-रूपसाध्यके न होनेसे कार्यत्व किसको सिद्ध करेगा? दूसरा पक्ष मानें तो पूर्वकालमें हेतुके न होनेसे अनित्यत्वरूप साध्यको कौन सिद्ध करेगा? तीसरा पक्ष मानें तो विनिगमना न होनेसे कौन किसका साध्य होगा? और कौन किसका साधक होगा? अर्थात् तीसरा पक्ष मानने में अनित्यत्वका साधक कार्यत्व होगा अथवा कार्यत्वका साधक अनित्यत्व होगा? इसलिये कार्यत्व हेतु नहीं है। एकपक्षको सिद्ध करनेवाली युक्तिको विनिगमना कहते हैं।

१७—अर्थापत्तिद्वारा सिद्धहेतुसे साध्यके सिद्धकरनेको 'अर्थापत्तिसमा' कहते हैं। जैसे 'शब्दोऽनित्यः कार्यत्वाद् घटवद्' इस स्थल में ही यदि कहा जाय कि—स्पर्श अद्रव्य है। द्रव्यमें अद्रव्य रहता है अद्रव्यमें नहीं। शब्द अद्रव्य है। इसलिये उसमें स्पर्शरूपअद्रव्य नहीं रहता है। इसलिये शब्द स्पर्शवान् नहीं किन्तु स्पर्शवद्भिन्न है। शब्दमें घटके साधर्म्य कार्यत्वसे यदि अनित्यत्व सिद्ध होगा तो शब्दमें आत्माके साधर्म्य स्पर्शवद्भिन्नत्वसे नित्यत्व भी सिद्ध होगा। "शब्दमें घटसाधर्म्य कार्यत्वसे अनित्यत्व सिद्ध होता है किन्तु आत्माके साधर्म्य स्पर्शवद्भिन्नत्वसे नित्यत्व सिद्ध नहीं होता है।" इस कथनमें कोई नियामक नहीं है।

१८—सर्वके अविशेष होनेके प्रसङ्गोद्भावनको 'अविशेषसमा' कहते हैं। जैसे—उक्तस्थलमें ही यदि कहें कि यदि घटके कार्यत्वरूप साधर्म्यसे शब्दमें अनित्यत्व सिद्ध करते हो तो फिर प्रमेयत्वरूप घटसाधर्म्यसे आत्मा ईश्वर आदि सभीमें अनित्यत्व सिद्ध किया जायगा। क्योंकि ऐसा सिद्ध न करने में कोई नियामक नहीं है।

१९—उभयपक्षसाधर्म्यसे हेतुकी उपपत्तिके कथन को 'उपपत्तिसमा' कहते हैं। जैसे उक्तस्थलमें ही यदि कहा जाय कि अनित्यत्वका साधक कार्यत्व उपपन्न है। इसलिये उससे शब्दका अनित्यत्व सिद्ध होता है। तो इसपर कहा जावे कि नित्यत्वसाधक स्पर्शवद्भिन्नत्व भी उपपन्न ही है। फिर उससे शब्दका नित्यत्व नहीं सिद्ध होता है। इसमें कोई नियामक नहीं है।

२०—वादीके कहे हुए हेतुके अभावमें भी साध्यकी उपलब्धिके कथनको 'उपलब्धिसमा' कहते हैं। यथा 'शब्दोऽनित्यः प्रयत्नानुविधायित्वात्' इस स्थलमें यदि कहा जाय कि शब्दमें प्रयत्नानुविधायित्व नहीं है। क्योंकि प्रयत्नके बिनाही पवनके नोदननामक संयोगसे तरुशाखाके भङ्ग होनेसे शब्दकी उपलब्धि होती है।

२१—किसी पदार्थकी अनुपलब्धिके बलसे वादी यदि उस

Scanned by CamScanner

पदार्थको अङ्गीकार न करे तो अनुपलब्धिके बलसे ही वादीके माने हुए किसी पदार्थके अभावको सिद्ध करनेको 'अनुपलब्धिसमा' कहते हैं। यहाँ पर ध्यानमें रखना चाहिये कि मीमांसक शब्दको नित्य मानते हैं और नैयायिक शब्द को अनित्य मानते हैं। नैयायिक कहते हैं कि उच्चारणके पूर्वमें शब्दकी उपलब्धि नहीं होती है। इसलिये शब्द अनित्य है।

मीमांसक कहते हैं कि उच्चारणके पूर्वमें भी शब्द विद्यमान (मौजूद) होता है किन्तु आवरणवशात् उसकी उपलब्धि नहीं होती है। यदि अनुपलब्धि मात्रसे शब्दको अङ्गीकार न किया जायगा तो पृथिवीके भीतर के भागमें रहे हुए जलका अङ्गीकार भी न किया जायगा। क्योंकि पृथिवीके भीतरके जलकी भी कूप खोदनेके पूर्वमें उपलब्धि नहीं होती है।

नैयायिक कहते हैं कि—जलके आवरण करनेवाले पदार्थ मिट्टीके तहकी (मृत्तिकास्तर की) उपलब्धि होती है। उसके कारणसे ही जलकी अनुपलब्धि नहीं होती है। इस लिये जलकी अनुपलब्धि होने पर भी जलका अनङ्गीकार नहीं करते हैं किन्तु अङ्गीकार ही करते हैं। शब्द को आवरण करनेवाला कोई पदार्थ उपलब्ध नहीं होता है। इसलिये शब्दकी अनुपलब्धि होनेसे उच्चारणसे पूर्व में शब्दको स्वीकार नहीं करते हैं। इसलिये शब्द अनित्य ही है।

इसपर मीमांसक लोग कहते हैं कि— उपलब्ध्यभावरूप अनुपलब्धिसे आवरण करनेवाले पदार्थके अभावकी सिद्धि होती है। किन्तु शब्दके आवरण करनेवाले पदार्थकी अनुपलब्धिकी

उपलब्धि भी तो नहीं होती है। इसलिये शब्दावरण करनेवालेकी अनुपलब्धि की भी तो अनुपलब्धि है। अनुपलब्धि की अनुपलब्धि तो उपलब्धिरूप होती है। इसलिये शब्दावरण करनेवाले पदार्थकी उपलब्धि सिद्ध हो गई। इसलिये आवरण करनेवाले पदार्थके होनेसे अनुपलब्ध होनेपर भी हम उच्चारणके पूर्वमें शब्दकी सत्ता मानते हैं।

मीमांसकों के इस प्रकार के कथन को नैय्यायिक लोग 'अनुपलब्धिसमा' कहते हैं।

२२—धर्मके नित्यत्व और अनित्यत्वके विकल्पसे धर्मीके नित्यत्व-साधनको 'नित्यसमा' कहते हैं। यथा—मीमांसक लोग नैय्यायिकोंसे कहते हैं कि आपलोग शब्दको अनित्य मानते हैं। उस पर हम कहते हैं कि शब्दमें रहा हुआ अनित्यत्व धर्म अनित्य है अथवा नित्य है? प्रथम पक्ष मानने पर कभी शब्दमें अनित्यत्वाभाव भी रहेगा तो शब्द नित्य सिद्ध हो जायगा। द्वितीय पक्ष माननेपर शब्द का नित्यत्व सिद्ध ही हो गया क्योंकि शब्दमें नित्यत्वके आश्रय रूप अनित्यत्वका सम्भव ही नहीं है। इस प्रकारका कथन 'नित्यसमा' है।

२३—अनित्य दृष्टान्तके साधर्म्यसे सर्वपदार्थोंके अनित्यत्व कथन को 'अनित्यसमा' कहते हैं। जैसे यदि कहा जाय कि—अनित्य घटके साधर्म्यसे यदि शब्दमें अनित्यत्व सिद्ध करते हो तो अनित्य घटके द्रव्यत्वादि यत्किञ्चित् साधर्म्यसे आत्मादि सर्वपदार्थों का अनित्यत्व भी स्वीकार करना पड़ेगा।

२४— अन्यकार्यसे भी वादीसे प्रयुक्त हेतुके सम्भवकथनको 'कार्यसमा' कहते हैं। यथा—'शब्दोऽनित्यः प्रयत्नानुविधायित्वात्

Scanned by CamScanner

ज्ञापकं निग्रहस्याथ निग्रहस्थानमीरितम् ।
अ तदनुमानस्य हेतुः पराजयस्य च ॥ ९९॥
निग्रहस्थानभेदाश्च द्वाविंशतिर्मता बुधैः ।

घटादिवत् ।' यहाँ पर प्रयत्न करनेसे घटादिके सदृश शब्दके स्वरूप की उत्पत्ति भी होती है और जलादिके सदृश आवरण करनेवालेकी निवृत्ति भी होती है। यहाँ प्रयत्नका कार्य आवरण करनेवालेकी निवृत्ति है। उच्चारण के पूर्वमें आवरण होनेसे विद्यमान होने पर भी शब्दकी अनुपलब्धि होती थी। प्रयत्न करनेसे आवरणके निवृत्त होने पर शब्द प्रकट हो गया। इसलिये शब्द नित्य है। इस प्रकारके कथनको 'कार्यसमा' कहते हैं।

वेदान्तवेत्ता महानुभावोंने जातिको अनुमानका अङ्ग माना है। इसलिये जातिका अन्तर्भाव अनुमानमें होता है ॥ ९८॥

निग्रहस्थान ।

निग्रहके ज्ञापकको 'निग्रहस्थान' कहते हैं। निग्रहस्थान पराजयका हेतु है। वह अनुमानका अङ्ग है। निग्रहस्थानके बाईस भेद हैं।

१—प्रतिज्ञात अर्थके त्यागको अथवा प्रतिज्ञात अर्थसे विरुद्ध अर्थके स्वीकारको 'प्रतिज्ञाहानि' कहते हैं। यथा 'शब्दोऽनित्य ऐन्द्रियकत्वाद् घटवत्' (शब्द अनित्य है इन्द्रियवेद्य होनेसे घटके सदृश) इसपर कहा जाय कि 'इन्द्रियवेद्य घटत्वादि नित्य हैं। उनके समान शब्दभी नित्य है' इस पर यदि कहे कि "अच्छा घटत्वके समान शब्द नित्य है।" तो 'प्रतिज्ञाहानि' नामवाला निग्रहस्थान हुआ।

२—पूर्वोक्त प्रतिज्ञाके दूषित होनेपर उस प्रतिज्ञामें अन्यविशेषण देने को 'प्रतिज्ञान्तर' कहते हैं। प्रतिज्ञान्तर दो प्रकारका होता है। १–पक्षमें विशेषण देनेसे। २-साध्यमें विशेषण देनेसे। प्रथमका उदाहरण 'शब्द अनित्य है' यह प्रतिज्ञा है। इस पर कहा गया कि ध्वनिरूप शब्द तो अनित्य है ही। इसलिये यहाँ पर अंशतः सिद्धसाधन होगा। इस पर यदि पक्षमें विशेषण देकर कहा जाय कि 'वर्णरूपशब्द अनित्य है' तो यह प्रतिज्ञान्तरनामक निग्रहस्थान होगा। द्वितीयका उदाहरण— 'क्षिति आदि गुणजन्य हैं कार्यहोनेसे' इस पर कहा गया कि क्षिति आदि अदृष्टजन्य तो हैं ही। इस पर साध्यमें विशेषण देकर यदि कहा जाय कि 'क्षिति आदि सविषयक गुणजन्य हैं।' तो यह प्रतिज्ञान्तरनामक निग्रह स्थान होगा। बुद्धि कृति इच्छा और द्वेष सविषयक गुण हैं।

३—प्रतिज्ञा और हेतुके विरोधको 'प्रतिज्ञाविरोध' कहते हैं। यथा– 'द्रव्यं गुणभिन्नं रूपादितः पृथक्त्वेनानुपलभ्यमानत्वात्।' (द्रव्य गुणभिन्न है रूपादिसे पृथक उपलब्ध न होनेसे) यहाँ पर प्रतिज्ञा और हेतुका परस्पर विरोध है। क्योंकि जो गुणभिन्न है वह रूपादिसे पृथक् रूपसे उपलब्ध होगा ही। रूपादिसे पृथक्रूपसे अनुपलब्ध न होगा। और जो रूपादिसे पृथक्रूपसे अनुपलब्ध है वह गुणभिन्न नहीं होगा किन्तु गुणरूपही होगा। इसप्रकार यहाँ पर प्रतिज्ञा और हेतु दोनोंमें परस्पर विरोध होनेसे प्रतिज्ञाविरोधनामक निग्रहस्थान है।

४—दूसरेके दूषण देनेपर स्वकथित अर्थके छिपानेको 'प्रति-

Scanned by CamScanner

ज्ञासन्यास' कहते हैं। जैसे न्यायमतावलम्बीने कहा कि—शब्द अनित्य है इन्द्रियग्राह्य होनेसे। इस पर प्रतिवादीने दूषण दिया कि "आपके कथनका सामान्य (जाति) में व्यभिचार है। अर्थात् जाति इन्द्रियग्राह्य है परन्तु वह अनित्य नहीं है किन्तु नित्य है।" इस पर यदि वादी कहे कि "कौन कहता है कि शब्द अनित्य है?" तो प्रतिज्ञासन्यासनामक निग्रह स्थान होगा। क्योंकि यहाँ पर उक्त कथनद्वारा वादीने अपने पूर्वकथनका अपलाप किया है। प्रतिज्ञासन्यास चार प्रकारका होता है। १—किसने ऐसा कहा है? २—मैंने तो परमतका अनुवाद (पुनः कथन) किया है। ३—अपने कहा होय तो भी कहे कि 'मैंने तो नहीं कहा है। तुम्ही कहो कि मैंने ऐसा कहा है।' ४—वह दूसरेने कहा है मैंने तो यही कहा है।

५—शुद्धहेतुमें दोष देने पर हेतुमें विशेषण देनेको 'हेत्वन्तर' कहते हैं। जैसे—कहा कि शब्द अनित्य है इन्द्रियग्राह्य होनेसे। इस पर प्रतिवादीने सामान्यमें व्यभिचारदोष दिया कि—इन्द्रियग्राह्य तो सामान्य भी है परन्तु वह नित्य है अनित्य नहीं। इस पर यदि वादी हेतुमें विशेषण देकर कहे कि—शब्दोऽनित्यः सामान्यवत्त्वे सतीन्द्रियग्राह्यत्वात्। 'शब्द अनित्य है क्योंकि वह सामान्य वाला (जातिवाला) है और इन्द्रियग्राह्य है।' तो यह हेत्वन्तरनामक निग्रह स्थान हुआ।

प्रकृतके अनुपयोगी पदार्थके कथनको 'अर्थान्तर' कहते हैं। जैसे कोई शब्दकी अनित्यताके अनुमानको—शब्दोऽनित्यः कृतकत्वात्' शब्द अनित्य है क्योंकि वह कृतक है। इसके अनन्तर उसे दृष्टा-

न्तादि कहना चाहिये। परन्तु यदि वह दृष्टान्तादिको न कहकर कहने लगे कि " शब्द गुण है। शब्द आकाशका गुण है। शब्द ध्वनि और वर्णके भेदसे दो प्रकारका होता है।" इत्यादि तो उसे अर्थान्तरनामक निग्रहस्थान प्राप्त होगा। क्योंकि उक्त कथनका प्रकृतमें (शब्दकी अनित्यत्वसिद्धिमें) कुछ उपयोग नहीं है।

७—अर्थके अवाचक वर्णोंके प्रयोगको 'निरर्थक' कहते हैं। यथा—'शब्दोऽनित्यः कखगत्वात्' (शब्द अनित्य है कखग होनेसे) यहाँ पर कखग वर्णो का वाच्य कोई अर्थ नहीं है। इसलिये यहाँ पर अर्थावाचक कखग वर्णोंके प्रयोग करनेसे निरर्थकनामक निग्रहस्थान होता है। असाधु शब्दोंके प्रयोग करने पर भी निरर्थकनामक निग्रह स्थान होता है। यथा-'अस्माकं मते अर्थरि तात्पर्यं न शब्दरि, (हमारे मतमें अर्थमें तात्पर्य है शब्द में नहीं) यहाँ पर अर्थरि तथा 'शब्दरि, यह दोनों शब्द असाधु (शुद्ध नहीं) हैं। इसलिये उक्त प्रकार से वाक्य प्रयोग करनेवाला निरर्थकसंज्ञक निग्रहस्थानको प्राप्त होता है।

८—सभा के और प्रतिवादी के अबोधजनक शब्दों के प्रयोग को 'अविज्ञातार्थक कहते हैं। कभी कभी वादी अपने पक्षको अत्यन्त शीघ्रता से कह जाता है अथवा वादी ऐसे अप्रचलित शब्दोंका अथवा जटिल भाषाका प्रयोग करता है। जिससे सभा तथा प्रतिवादी उसे समझ ही नहीं सकते है। इस प्रकार वादी के तीनवार कहने पर भी यदि सभा और प्रतिवादी उसके पक्षको न समझें तो

Scanned by CamScanner

वादी अविज्ञातार्थक नामक निग्रहस्थानको प्राप्त होता है ।

९– परस्पर असम्बद्ध पदसमुदायके प्रयोग करने को 'अपार्थक' कहते हैं । यथा– 'घटः शब्दोऽश्वो वाऽनित्यः' इत्यादि प्रकारसे बोलने पर अपार्थकनामक निग्रहस्थान होता है ।

१०–अवययों के विरुद्ध क्रमसे बोलनेको 'अप्राप्तकाल' कहते हैं । जैसे–'तथा चायम्' 'पर्वतो अग्निमान्' तस्मात् तथा' 'धूमात्' ('वैसा यह है' 'पर्वत् अग्निमान्' 'इसलिये वैसा है' 'धूम होनेसे') इत्यादि प्रकारसे अवयवोंको विरुद्ध क्रमसे बोलने पर अप्राप्तकालनामक निग्रहस्थान प्राप्त होता है ।

११–प्रतिज्ञादि पांचो अवयवोंमें से किसी एक अवयवसे हीन अवयवोंके कथनको 'न्यून' कहते हैं । जैसे यदि न्यायमतावलम्बी 'पर्वतो अग्निमान् धूमात् । महानसवत् ।' इन तीन अवयवोंको ही कहे तो उसे न्यूननामक निग्रहस्थान प्राप्त होगा ।

१२—एक ही हेतु तथा एक ही उदाहरणसे साध्यकी सिद्धि हो जानेपर दो या दोसे अधिक हेतु वा उदाहरणके कथनको 'अधिक' कहते हैं । जैसे वादी यदि कहे कि 'पर्वत अग्निवाला है धूम होनेसे प्रकाश होनेसे ।' तो वादीको अधिकनामक निग्रहस्थान प्राप्त होगा।

१३–अनुवाद बिना कथित विषयके पुनः कथन करनेको 'पुनरुक्त' कहते हैं । जैसे—'शब्द अनित्य है' 'शब्द अनित्य है' यह पुनरुक्त है । यह ध्यानमें रखना चाहिये कि आवश्यकता पड़ने पर वादी और मध्यस्थकी अनुमतिसे कथित विषयके पुनः कथन करनेमें उक्त दोष नहीं होता है ।

१४–परिषद्के तीन बार कहने पर भी प्रतिवादीके विज्ञात हुए विषयके उत्तर न कहने को 'अननुभाषण' कहते हैं ।

१५–वादीके तीन वार कहने पर सभाके समझ जाने पर भी प्रतिवादीके वाक्यार्थ न समझने को 'अज्ञान' कहते हैं ।

१६–उत्तरदेनेयोग्य वादीसे कहे हुये अर्थको समझ लेने पर भी उत्तरकी स्फूर्ति न होनेसे प्रतिवादीके चुप रहनेको 'अप्रतिभा' कहते हैं ।

१७–कार्यान्तरके बहानेसे कथाके (बादके) बन्द कर देनेको 'विक्षेप' कहते हैं । जैसे वादी या प्रतिवादी दोनोंमें से कोई भी यदि 'अमुक कार्य करना बाकी है । उसको पूरा करके अवशिष्ट वाद फिर करूँगा ।' इत्यादि कह कर सभासे उठ खड़ा हो तो वह विक्षेपनामक निग्रहस्थानकोप्राप्त होता है ।

१८--स्वपक्षमें दिये हुए दोषका उद्धार किये बिना ही परमतमें दूषण देनेको 'मताऽनुज्ञा' कहते हैं । जैसे देवदत्तने यज्ञदत्तको कहा कि 'तू चोर है । अब यदि यज्ञदत्त अपने ऊपर किये गये दोषका उद्धार किये बिना ही देवदत्तको कहे कि 'तू भी चोर है' । तो यह मताऽनुज्ञानामक निग्रहस्थान होगा ।

१९–प्रतिपक्षीके प्राप्त हुए निग्रहस्थानकी उपेक्षा करनेको 'पर्यनुयोज्योपेक्षण' कहते हैं । सभा या मध्यस्थ के होते हुये भी प्रतिपक्षीके दोषका उद्घाटन करना वादी तथा प्रतिवादीका परम कर्तव्य है । उसके न करने पर पर्यनुयोज्योपेक्षणनामक निग्रहस्थान प्राप्त होता है ॥१९॥

Scanned by CamScanner

अनुमानेऽनुमानाङ्गानामन्तर्भाव ईरितः ॥१००॥
अनुमानं प्रमाणं न व्याप्त्ययोगेन हेतुना ।
नैवं हि शक्यते वक्तुं विकल्पासहता यतः ॥१०१॥

२०—जहाँ निग्रहस्थान न हो वहाँ पर भी निग्रहस्थानके कथन करनेको 'निरनुयोज्यानुयोग' कहते हैं । छल और जातिका अन्तर्भाव निरनुयोज्यानुयोज्यनामक निग्रहस्थानमें होता है ।

२१—अपने माने हुये सिद्धान्तसे विरुद्ध अर्थके स्वीकार करनेको 'अपसिद्धान्त' कहते हैं । जैसे—सांख्यवादीके आत्माको कर्त्ता मानने पर अथवा वैशेषिकमतावलम्बीके आत्माको ज्ञानरूप मानने पर अथवा विशिष्टाद्वैतवादीके जगत्को मिथ्या मानने पर अथवा ब्रह्मको निर्विशिष्ट मानने पर अपसिद्धान्तनामक निग्रहस्थान प्राप्त होता है।

२२—हेतुके समान भासमान हेतुको हेत्वाभास कहते हैं। हेत्वाभासोंका निरूपण पूर्वमें किया जा चुका है । इसलिये यहाँ पर नहीं किया गया है ।

अनुमानके अङ्गोंका अन्तर्भाव अनुमानमें ही होता है ॥१००॥

अनुमानका प्रामाण्य

चार्वाकमतावलम्बी लोग अनुमानको प्रमाणरूपसे नहीं मानते हैं। अनुमानके प्रमाणत्व का खण्डन करनेके लिये वे लोग अनुमान का प्रयोग कहते हैं कि—अनुमानं न प्रमाणं व्याप्त्ययोगात् । (व्याप्तिके अभावरूप हेतुसे अनुमान प्रमाण नहीं है ।

किन्तुके न सह सकनेसे वे लोग उक्त प्रकारसे कह नहीं सकते

प्रमाणशून्यताव्याप्तो हेतुरस्ति न वा ह्ययम् ?
आद्ये प्रामाण्यमाप्नोति चानुमानमनर्गलम् ॥१०२॥
द्वितीये स्वीकृते पक्षेऽनुमाने दूषणं न हि ।
प्रामाण्यमनुमानस्य निरासं गम्यते न तत् ॥१०३॥

इत्युपनिषद्भाष्यकारपण्डितसम्राट्स्वामिश्रीवैष्णवाचार्यरचितायां
मानरत्नावल्यामनुमानप्रमाणपरिच्छेदः ॥२॥

सकते हैं । वह विकल्प इस प्रकार है कि— आपलोगोंका व्याप्त्यभावरूप हेतु प्रमाणरहित्वरूप साध्यसे व्याप्त है अथवा नहीं ? प्रथमपक्षके मानने पर अनुमानप्रमाण बाधारहित प्रामाण्यको प्राप्त हो जाता है । क्योंकि इसप्रकारसे तो हेतुमें साध्यकी व्याप्तिका योग ही हो जाता है । हेतुमें आपका माना हुआ साध्यकी व्याप्तिका अभाव नहीं सिद्ध होता है। इसलिये हेतुके व्याप्तिविशिष्ट होनेसे अनुमानका प्रामाण्य सिद्ध ही हो जाता है । और दूसरा पक्ष मानने पर अनुमानमें दूषण ही नहीं रह जाता है । क्योंकि व्याप्तिसे विशिष्ट न होनेसे आपका व्याप्त्यभावरूप हेतु अनुमानमें प्रमाणत्वाभावको न सिद्ध कर सकेगा । इसलिये अनुमानमें प्रमाणत्वाभावको सिद्ध करनेके लिये किये हुये आपके उक्त अनुमानके निष्फल हो जानेसे अनुमानके प्रामाण्यका बाधक कोई नहीं रहता है । इसलिये अनुमानके प्रामाण्यका खण्डन किसी भी प्रकारसे नहीं हो सकता है ॥१०१॥१०२॥१०३॥

इत्युपनिषद्भाष्यकारपण्डितसम्राट्स्वामिश्रीवैष्णवाचार्यविरचिते
मयूखेऽनुमानपरिच्छेदः ॥ २ ॥

Scanned by CamScanner

अथ शब्दप्रमाणम्

अनाप्तानुक्तवाक्येन जनिता या तदर्थधीः ।
शाब्दी प्रमा प्रबोध्या सा शब्दस्तत्करणं मतम् ॥१॥
शून्यं करणदोषेण बाधकप्रत्ययेन च ।
वाक्यं शब्दतयाऽऽम्नातमथवा मानवेतृभिः ॥२॥
करणादोषता तत्रापोरुषेयतया मता ।
स्मृत्वा स सर्गकाले हि ब्रह्मणे ब्रह्मणः पुनः ॥३॥
पूर्वक्रमविशिष्टानां वेदानां चोपदेशतः ।

अथ शब्दप्रमाणम्

जो आप्त (यथार्थवक्ता) न हो उसे अनाप्त कहते हैं । अनाप्तपुरुषसे अनुक्त (अकथित) वाक्यसे उत्पन्न हुई वाक्यार्थबुद्धिको 'शाब्दीप्रमा' (शाब्दबोध) कहते हैं । उस शाब्दीप्रमाके करणको 'शब्दप्रमाण' कहते हैं ॥१॥

अथवा प्रमाणवेत्ता महानुभाव करणदोष (इन्द्रियदोष) और बाधकप्रत्यय (बाधकज्ञान) से रहित वाक्यको 'शब्द' कहते हैं ॥२॥

वेदरूप वाक्य अपौरुषेय है अर्थात् पुरुषकृत नहीं है । इसलिये उसमें करणदोष नहीं माना गया है । सृष्टिकालमें पूर्वकालीन क्रमसे विशिष्ट वेदोंको स्मरण करके ब्रह्मस्वरूप भगवान् श्रीरामजीने उसी क्रमसे ब्रह्माजीको उपदेश दिया है । इसलिये वेदोंका अपौरुषेयत्व (पुरुषकृत नहीं होना) स्वीकार किया गया है । अतएव वेदोंको नित्य भी माना गया है ।

अपौरुषेयता तेषां स्वीकृता नित्यता तथा ॥४॥

श्रीसम्प्रदायके प्रधानाचार्य आनन्दभाष्यकार भगवान् श्रीरामानन्दाचार्यजी यतिराजने कहा है कि— 'ब्रह्मणोऽखिलवेदकर्तृतया युक्तमेव सार्वज्ञ्यम् । तथा च श्रुतयः " अस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतदृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरस इतिहासः पुराणं विद्या उपनिषदः श्लोकः सूत्राण्यनुव्याख्यानानि व्याख्यानानि ।" (बृ० ४ । ५ । ११) " छन्दांसि जज्ञिरे तस्मात् " (यजु० मा० शा०) अत्र निःश्वसितवदन्तरेण प्रयत्नं वेदानां तत एव प्रादुर्भावनिश्चयात् तद्रचितत्वमेव । न ह्यत्र वेदकर्तृत्वमर्थमासाद्य तदनुगुणप्रणयनकर्तृत्वम् । येन विषयसापेक्षत्वेन पौरुषेयत्वं स्यात् । न वा केवलमुच्चारयितृत्वरूपम् । आधुनिकाध्यापकसादृश्याद् वेदस्य विशिष्टब्रह्मकर्तृत्वसिद्धेः । तदा ह्यखिलवेदोच्चारयितृतया ब्रह्मणा विशिष्टाध्यापकत्वस्य लाभेऽपि तावन्मात्रस्यापुरुषार्थतया वैलक्षण्यं न स्यात् । तस्मात् सृष्टेः प्राग् यादृशक्रमस्वरवर्णानुपूर्वीमानासीत् तथैवास्मिन् कल्पे विरचय्य प्रवर्त्तयति कारुणिकः परेशः । तथा च "धाता यथापूर्वमकल्पयत्" इतिवेदोदितदिशा प्राचीनानुपूर्व्यनुरूपरचनया सार्वज्ञ्यं वेदकर्तृत्वं च स्वतः सिध्यति । इदमेव च परमात्मनोऽन्यविलक्षणं वेदकर्तृत्वं यत् परसङ्कलितक्रमवर्णाद्यनधीनतया स्वातन्त्र्येण पूर्वकल्पीयस्वकृतक्रमादिवदिदानीमपि तत्कर्तृत्वम् । एवं च

Scanned by CamScanner

वेदानां परमात्मकर्तृकत्वेऽपि क्रमवर्णपदवाक्यतदर्थानामनादिसिद्धानामेव तादवस्थ्यात्तेषां स्वतः प्रामाण्यमपौरुषेयत्वं च सुतरां सम्पन्नम् । न चात्राप्रामाण्यशङ्कासम्भवः । अखिलहेयप्रत्यनीकस्यावाप्तसमस्तकामस्य नित्यनिरतिशयज्ञानानुभूयमानपरावरवस्तुतत्त्वस्य निरवधिकमहिम्नः श्रीरामस्य वचनत्वात् । रागद्वेषदोषदूषितान्तःकरणानां विप्रलिप्सूनां वचनेष्वेव तत्सम्भवः ।' (आनन्दभाष्य १–१–३)

तदनुसार मैंने भी लिखा है कि– समस्तवेदोंके कर्त्ता होनेसे ब्रह्मकी सर्वज्ञता उचित ही है । श्रुतियाँ भी इसी प्रकारसे कहती हैं। "अस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतद् ऋगवेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरस इतिहासः पुराणं विद्या उपनिषदः श्लोकः सूत्राण्यनुव्याख्यानानि व्याख्यानानि (बृ० ४ । ५ । ११) (इस महान् परमात्माका यह निःश्वास जो ऋग्वेद यजुर्वेद सामवेद अथर्ववेद रामायण महाभारत रूप इतिहास विष्णुपुराणादि पुराण विद्या उपनिषद् श्लोक (श्लोकबद्ध पाञ्चारात्रादिग्रंथ) सूत्र अनुव्याख्यान तथा व्याख्यान हैं ।) "छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद्" (यजु ३१ । ७) (उस परमात्मासे छन्द अर्थात् वेद उत्पन्न हुए ।) इन श्रुतियोंमें निःश्वास के समान बिना ही प्रयत्नके वेदोंका प्रादुर्भाव इसी ब्रह्मसे हुआ है। यह निश्चित किया गया है । इसलिये "वेदकी रचना इसी ब्रह्मसे हुई है" यह सिद्ध होता है । इस वेदरचनाका यह अर्थ नहीं मानना चाहिये कि–ब्रह्म अर्थोंके अनुसार शब्दोंको जोड़कर वेदोंका निर्माण करता है । क्योंकि ऐसा मानने पर विषयोंकी अपेक्षा रखनेके कारण

वेदोंमें पौरुषेयता आ जावेगी । इसी प्रकार केवल उच्चारणकर्त्ता भी ईश्वरको नहीं कह सकते । क्योंकि ऐसा मानने पर आधुनिक अध्यापकके ही समान ईश्वर भी माना जायगा । तब वेदोंमें विशिष्ट ब्रह्मकर्तृता सिद्ध नहीं होगी ।

इसको स्फुट (स्पष्ट) करते हैं कि केवल उच्चारणकर्त्ता मानने पर समस्त वेदोंके उच्चारणकर्त्ता होनेसे ब्रह्ममें विशिष्ट अध्यापकताका लाभ होनेपर भी इतनेसे ही कोई पुरुषार्थ ब्रह्ममें सिद्ध नहीं होता है । अतः अन्यजीवोंसे कुछ वैलक्षण्य सिद्ध नहीं होता है। इसलिये सृष्टिके प्रथम जिस क्रम स्वर वर्ण और आनुपूर्वीके साथ वेद विद्यमान था ठीक उसी प्रकार इस कल्पमें भी विरचन करके वह करुणासागर परमेश्वर प्रवर्तित करता है। इससे "धाता यथापूर्वमकल्पयत्" (परमात्माने पूर्ववत् ही वेदकी रचनाकी) इस वैदिक वचनके अनुसार गतकल्पमें जैसी आनुपूर्वी थी ठीक वैसी ही आनुपूर्वीकी रचना परमात्माने इस वर्त्तमान कल्पमें भी की है । इससे परमात्मामें सर्वज्ञता और वेदकर्तृता दोनों स्वतः सिद्ध हो जाती हैं। यही तो परमात्मामें अन्यजीवोंसे विलक्षण वेदकर्तृत्व है । अन्य किसीसे संकलित क्रम और वर्ण आदिके अधीन न होकर अपने स्वतन्त्ररूपसे ही पूर्वकल्पमें निजकृत वेदके अनुसार ही क्रम वर्ण पद वाक्य और इनके अर्थ अनादि सिद्ध ही पूर्वके समान ही सुरक्षित होनेसे स्वतः प्रामाण्य और अपौरुषेयत्व ठीकसे सम्पन्न होते हैं । इसमें अप्रमाण्यकी शङ्काका लेशमात्र भी सम्भव नहीं रहता है । क्योंकि वेद समस्त निन्द्य धर्मोंसे रहित समस्त मनोरथोंसे परिपूर्ण

Scanned by CamScanner

'सा हि श्रीरमृता' चाथ 'वाचा विरूप नित्यया'।
इत्यादिश्रुतिवृन्दे हि प्रोक्ता वेदस्य नित्यता ॥५॥
'धर्ममूलं वेदमाहुर्ग्रन्थराशिमकृत्रिमम्।'
इत्यादिस्मृतितश्चापि सिद्धा वेदस्य नित्यता ॥६॥
वेदे सकर्तृकत्वं न तस्माद् वाक्यत्वहेतुना।
'ऋचःसामानि' चैषा तु प्रादुर्भावपरा श्रुतिः ॥७॥

नित्य तथा सर्वोत्कृष्ट ज्ञानद्वारा पर और अवर वस्तुओंके तत्त्वोंके जाननेवाले और अपार महिमावाले श्रीरामचन्द्ररूप परब्रह्मका वचन है। राग और द्वेषसे जिनका अन्तःकरण दूषित हो गया है ऐसे वंचकोंके वचनोंमें अप्रामाण्यशंकाकी सम्भावना हुआ करती है। (वैष्णवालंकारभाष्य १। १ ३) ॥३॥४॥

'सा हि श्रीरमृता' तथा 'वाचा विरूप नित्यया' इत्यादि श्रुतियोंमें भी वेदकी नित्यता कही गई है ॥५॥

"धर्मके मूल स्वरूप अकृत्रिम ग्रन्थराशिको वेद कहते हैं।" इत्यादिस्मृतिवचनोंसे भी वेदकी नित्यता सिद्ध है ॥६॥

इसलिये वाक्यत्वहेतुसे वेदमें सकर्तृकत्व सिद्ध नहीं हो सकता है। अर्थात् कुछ लोग अनुमानप्रमाणसे वेदमें सकर्तृकत्व सिद्ध करते हैं कि–वेदः सकर्तृको वाक्यत्वात्। अस्मदादिवाक्यवत्। (वेदको किसी कर्त्ताने बनाया है। क्योंकि वह वाक्य है।) परन्तु इस अनुमानद्वारा वेदका कर्त्ता सिद्ध नहीं हो सकता है। क्योंकि अनुमानप्रमाणसे शब्दप्रमाण प्रबल होता है। इसलिये उक्त वेदको नित्य कहनेवाली श्रुतियोंसे यह अनुमान बाधित हो जाता है।

'ऋचः सामानि जज्ञिरे' यह श्रुति तो ऋचाओंकी उत्पत्तिको नहीं

विकल्पासहताहेतोर्बाधकप्रत्ययोऽपि न।
सोऽनुमानाच्छ्रुतेर्वाथ स्मृतेर्वा लौकिकादथ ॥८॥
वाक्यान्नाद्योऽनुमानस्य ह्यागमबाध्यता यतः।
वेदप्रामाण्यमायाति द्वितीये स्वीकृते सति ॥९॥
न तृतीयः स्मृतेर्यस्माद् वेदमूलकता मता।
नान्तिमो विषये तस्या लौकिके चाप्रवर्त्तनात् ॥१०॥

कहती है। किन्तु ऋचाओंके प्रादुर्भाव (प्राकट्य) को कहती है। इसलिये वेद नित्य ही हैं किसीके बनाये हुये नहीं हैं ॥७॥

वेदमें बाधकप्रत्ययका अभाव

विकल्पको न सह सकनेसे वेदमें बाधकप्रत्यय भी नहीं कह सकते हैं। यथा–वेदमें यदि बाधकप्रत्यय है तो वह अनुमानसे है श्रुतिसे है स्मृतिसे है अथवा लौकिकवाक्यसे है? प्रथम पक्ष नहीं स्वीकार कर सकते हैं। क्योंकि प्रबलप्रमाण ही बाधक होता है। प्रत्यक्ष और अनुमान दोनों प्रमाणोंसे शास्त्रप्रमाण प्रबल है। इसलिये अनुमान प्रमाण ही शास्त्रप्रमाणसे बाधित हो सकता है। अनुमानप्रमाण कभी भी शास्त्रप्रमाणका बाधक नहीं हो सकता है। क्योंकि वह शास्त्रसे प्रबल नहीं किन्तु दुर्बल है। यदि दूसरा पक्ष स्वीकार कर श्रुतिको ही बाधक मानें तो वेदका प्रामाण्य सिद्ध ही हो जाता है ॥८॥९॥

तीसरा पक्ष स्वीकार कर स्मृतिको वेदका बाधक नहीं कह सकते हैं। क्योंकि वेदका अनुसरण करनेसे ही तो स्मृतिका प्रामाण्य होता है। वेदसे विरुद्ध होनेमें तो स्मृति स्वयं ही अप्रमाणित हो

Scanned by CamScanner

सूक्ष्मज्ञानां तथा नाप्त्या सन्दिग्धबोधिताऽपि न ।
वेदाप्रामाण्यता तस्मात् कथञ्चिन्नैव सिध्यति ॥११॥
शब्दो न हि प्रमाणं चैतद् वाक्यं बाधितं न वा ?
उभयोः पक्षयोरेव याति शब्दः प्रमाणताम् ॥१२॥

जाती है। इसलिये स्मृति कभी भी वेद बाधक नहीं हो सकती है। चौथा पक्ष स्वीकार नहीं कर सकते हैं कि 'लौकिकवाक्य वेदका बाधक है।' क्योंकि अलौकिकविषयमें लौकिक वाक्य की प्रवृत्ति ही नहीं होती है। लौकिक वाक्योंकी प्रवृत्तिकी सीमा तो प्रत्यक्ष और अनुमान प्रमाणोंके विषय तक ही है। इसलिये प्रत्यक्ष और अनुमान प्रमाणोंसे नहीं जाननेयोग्य पदार्थोंके बोधित करनेसे शास्त्रकी अर्थवत्ता विद्वान्लोग स्वीकार करते हैं ॥१०॥

वेदमें सन्दिग्धार्थबोधकता भी नहीं है। क्योंकि भगवदाराधन करनेसे प्राप्त सूक्ष्म बुद्धिवाले पुरुषोंको वेदमें कहीं भी सन्दिग्धार्थबोधकता विदित नहीं हुई है। इसलिये वेदोंका अप्रामाण्य किसी भी प्रकारसे सिद्ध नहीं होता है ॥११॥

एक बात और पूछता हूँ कि 'शब्दो न प्रमाणम्' (शब्द प्रमाण नहीं है) यह वाक्य बाधित है कि नहीं ? दोनों पक्षोंके स्वीकार करने पर शब्दकी प्रमाणता ही सिद्ध होती है। तात्पर्य यह है कि–'शब्द प्रामाण नहीं है' यदि इसको बाधित मानकर कहें कि 'यह वाक्य प्रमाणित नहीं है' तो इसका यही अर्थ हुआ कि 'शब्द प्रमाण है' इसलिये प्रथम पक्ष मानने पर शब्दका प्रामाण्य ही सिद्ध होता है। यदि दूसरा पक्ष मान कर कहें कि उक्तवाक्य

प्रत्यक्षप्रमितो नैषोऽनुमानाऽनुमितोऽपि न ।
ज्ञातस्तु शब्दतस्तस्माच्छब्दो मानन्तरं मतः ॥१३॥
अत्यन्तालौकिके चार्थे शास्त्रस्यैव प्रमाणता ।
केवलस्य तु तर्कस्य सामर्थ्यं तत्र नास्ति हि ॥१४॥
ननु कार्यपरं वाक्यं प्रमाणं स्वीकृतं बुधैः ।

बाधित नहीं है। तब तो उक्तवाक्य रूप शब्द बाधित न होनेसे प्रमाणित ही सिद्ध होता है। इसलिये दोनों पक्ष मानने पर शब्द का प्रामाण्य ही सिद्ध होता है ॥१२॥

शब्दका पृथक् प्रमाणत्व

वैशेषिक और बौद्ध मतानुयायी शब्दको पृथक् प्रमाण रूपसे नहीं मानते हैं। परन्तु उनका कथन ठीक नहीं है क्योंकि शब्दग्राह्यपदार्थके विषयमें सबको ऐसी प्रतीति होती है कि यह पदार्थ प्रत्यक्ष प्रमाणसे तथा अनुमान प्रमाणसे नहीं ज्ञात हुआ है किन्तु शब्द प्रमाणसे ही ज्ञात हुआ है। इसलिये प्रत्यक्ष तथा अनुमान इन दोनों प्रमाणोंसे शब्द प्रमाण पृथक् प्रमाण है ॥१३॥

अत्यन्त अलौकिक पदार्थको शास्त्रप्रमाण ही बतला सकता है। केवल तर्ककी सामर्थ्य अलौकिकवस्तु साधनमें नहीं होती है। इसीलिये भगवान् बादरायणने "तर्काऽप्रतिष्ठानात्" .... सूत्रकी रचना की है ॥१४॥

सिद्धवाक्यका प्रामाण्य

मीमांसक लोग कहते हैं कि—कार्यपरक वाक्योंसे ही व्युत्पत्ति (ज्ञान) होती है। यथा—-एक स्थान पर तीन पुरुष हैं। १– स्वामी २– सेवक ३– जिज्ञासुबालक। स्वामीने कहा 'गाय लाओ'

Scanned by CamScanner

कार्यपरपदानां हि व्युत्पत्तेरवधारणात् ॥१५॥
सिद्धब्रह्मपराणां वेदानांनैव प्रमाणता।
नैवमङ्गीकृतो यस्मात् तेषामुपासनान्वयः ॥१६॥

जिज्ञासु अभी इस वाक्यका अर्थ नहीं समझता है। परन्तु जाननेकी इच्छा है। उसने देखा कि स्वामीके वचन सुनकर सेवक उठा और गायको लाया। जिज्ञासुने समझा कि सेवककी प्रवृत्तिका हेतु उक्त वाक्य श्रवण है। स्वामीने फिर कहा कि 'गायको बाँध दो'। फिर कहा कि 'अश्वको लाओ'। सेवकने सुनकर गायको बाँध दिया और घोडेको लाया। जिज्ञासुने देखा कि दूसरे वाक्यमें पहले वाक्यका गाय शब्द है पर लाना क्रिया नहीं किन्तु बाँधना क्रिया है। तीसरे वाक्यमें दूसरे वाक्यका गाय शब्द नहीं है किन्तु अश्व शब्द है। दूसरे वाक्यकी बाँधना क्रिया नहीं है। किन्तु प्रथम वाक्यकी लाना क्रिया है। इस प्रकार आवाप (मिलाना) और उद्वाप (निकाल देना) से जिज्ञासु को गाय पदका अर्थ और अश्व पदका अर्थ तथा लाना और बाँधना क्रियाका बोध कार्यपरक वाक्यसे होता है। इस प्रकारसे निश्चित होनेसे वेदके कार्यपरक वाक्योंका तो प्रामाण्य है किन्तु सिद्धब्रह्मपरक वाक्यरूप वेद भागका प्रामाण्य नहीं है।

इस प्रकारके मीमांसकोंके कथनके उत्तर रूपसे कहा जाता है कि ऐसा नहीं कहना चाहिये। क्योंकि सिद्धब्रह्मपरक वेदके वेदान्त भागका अन्वय (सम्बन्ध) " आत्मेत्येवोपासीत " इत्यादि उपासना परक वाक्योंमें होता है। इसलिये वेदान्तभाग भी विधिवाक्यमें अन्वित होनेसे प्रमाण ही है। स्वरचित आनन्दभाष्यमें आचार्यस-

शब्द]

"पिता ते सुखमस्ती" ति सिद्धवाक्येन बोधनात्।

प्राह भगवान् श्रीरामानन्दाचार्यजीने कहा है कि——

" एवमुपासनविधिप्रतिपादनेनापि वेदान्तानां ब्रह्मणि समन्वयः स्पष्ट एव। तथा हि—— 'आत्मेत्येवोपासीत' (बृ. १।४।७) 'आत्मानमेव लोकमुपासीत' (बृ. १।४।१५) 'ब्रह्मविदाप्नोति परम' (तै. १।१।१) 'ओमित्येवाक्षरमुद्गीथमुपासीत' (छा. १।१।१) 'ओमित्येवं ध्यायथ आत्मानम्' (मु. २।२।६) 'सोन्वेष्टव्यः स विजिज्ञासितव्यः' (छा ८।७।१।) इत्येवमादिषु विधीयमानोपासनायां विषयतयान्वितं ब्रह्मस्वरूपं विशेषतः प्रतिपादयति कृत्स्नमुपनिषच्छास्त्रम्। " (आनन्दभाष्य १।१।४)

(इस प्रकार उपासनाविधिके प्रतिपादन करनेसे भी वेदान्तका ब्रह्ममें समन्वय स्पष्ट ही है। इसीका उपपादन करते हैं। 'आत्माकी ही उपासना करे' (बृ. १।४।७।) 'आत्मरूप लोककी उपासना करे' (बृ. १।४।१५) 'ब्रह्मोपासक पर ब्रह्मको प्राप्त होता है।' (तै. १।१।१) 'ओम अक्षरकी उद्गीथरूपसे उपासना करे' (छा. १।१।१।) 'आत्माका ओमरूपसे ध्यान धरे (मु. २।२।६)' उसका अन्वेषण करो उसको जाननेकी इच्छा करो' (छा. ८।७।१) इत्यादिवाक्योंसे विधीयमान उपासनाके विषयरूपसे अन्वित ब्रह्मस्वरूपका ही विशेषरूपसे समस्त उपनिषत् शास्त्र प्रतिपादन करते हैं।) ॥१६॥

" तुम्हारा पिता सुखपूर्वक है " इस प्रकारके सन्देशको सुनकर

Scanned by CamScanner

भूयःसिद्धपदैश्चापि शिक्षणाद् बोधदर्शनात् ॥१७॥
सिद्धसाध्यविभेदाभ्यां वाक्यार्थौ द्विविधस्ततः ।
आद्यो 'नीलघटो' ज्ञेयः परश्च 'घटमानय', ॥१८॥
वेदो ह्यलौकिकानाञ्चोपायानामवबोधकः ।
स च पूर्वोत्तराभ्यां हि भागाभ्यां द्विविधो मतः ॥१९॥
कर्म पूर्वेण भागेनोत्तरेण ब्रह्म कथ्यते ।
कर्म चाराधनं तत्र ब्रह्माराध्यं समीरितम् ॥२०॥

पुत्र प्रसन्न होता है । इसलिये विदित होता है कि सिद्ध वाक्यसे भी ज्ञान प्राप्त होता है । माता पिता के द्वारा 'यह माँ है' 'यह मामा है' इस प्रकार बहुत बार सिद्धपदोंसे बालकको सिखलाने पर बालकको बोध हो जाता है कि 'यह माँ है' और 'यह मामा है।' इससे भी विदित होता है कि सिद्धपदों और वाक्योंसे भी व्युत्पत्ति (बोध) होती है । इसलिये मीमांसकोंका यह कथन ठीक नहीं है कि—कार्यपरकवाक्यसे ही बोध होता है ॥ १७ ॥

इससे निर्णीत हुआ कि सिद्धवाक्यार्थ और साध्यवाक्यार्थके भेदसे वाक्यार्थ दो प्रकारका है । १— 'नीला घट है' । २— 'घटको लाओ' । यहाँ पर प्रथम सिद्धवाक्यार्थ है और द्वितीय साध्यवाक्यार्थ ॥१८॥

वेद और वेदका विभाग

अलौकिक उपायोंके बोधक वाक्यको वेद कहते हैं । वेद दो प्रकार का है । पूर्वभाग और उत्तर भाग ॥१९॥

पूर्वभागसे कर्म और उत्तरभागसे ब्रह्म कहा जाता है । कर्मको

शब्द]

द्वयोर्मीमांसयोर्धर्मावेदनाच्चैकशास्त्रता ।

आराधन तथा ब्रह्मको आराध्य कहते हैं ॥२०॥

धर्मके ही कथन करनेवाली होनेसे पूर्व और उत्तर दोनों मीमांसाओंका एकशास्त्रत्व है । आनन्दभाष्यकार भगवान् श्रीरामानन्दाचार्यजीने भी कहा है कि— कर्मज्ञानानुष्ठानयोश्चित्तकल्मषापनयनपूर्वकवैराग्योत्पादनद्वारा च ब्रह्मज्ञानं प्रति साधनत्वेन तयोर्हेतुहेतुमद्भावतयाऽपि पूर्वोत्तरमीमांसयोरेकशास्त्रत्वम् । सिध्यति चैतद् वृत्तिकारवाक्याभ्यां प्रस्फुटम् । वृत्तात् कर्माधिगमादनन्तरं ब्रह्मविविदिषेति । संहितमेतच्छारीरकं जैमिनीयेन षोडशलक्षणेन पूर्वकाण्डार्थविधायकेनेति च । (आनन्दभाष्य १।१।१)

मैंने भी वैष्णवालङ्कारभाष्यमें लिखा है कि— "कर्मज्ञान होनेसे और कर्मका अनुष्ठान करनेसे प्रथम चित्तकी मलिनता दूर होती है । तब वैराग्य उत्पन्न होता है । तदनन्तर ब्रह्मज्ञान होता है । अतः कर्मज्ञान ब्रह्मज्ञानका साधन है । अतः कर्मज्ञान और ब्रह्मज्ञानका कार्यकारणभाव है । अर्थात् कर्मज्ञान कारण है और ब्रह्मज्ञान कार्य है । इसलिये पूर्वमीमांसा और उत्तरमीमांसा दोनों मिलकर एकशास्त्र ही हैं । अर्थात् दोनों एकशास्त्रके ही पूर्व और उत्तर भाग हैं ।

वृत्तिकार भगवान् श्री बोधायन नामक जगद्गुरु श्रीपुरुषोत्तमाचार्यजीके वक्ष्यमाण (आगे कहे जाने वाले) दो वाक्योंसे यह पूर्व और उत्तर मीमाँसाओंका एकशास्त्रत्व विशेष स्फुट हो जाता है । उन दो वाक्योंमें से एक है— वृत्तात् कर्माधिगमादनन्तरं ब्रह्मविविदिषेति (बोधायनवृत्ति) अर्थ—वेदाध्ययन करने पर पूर्वमीमांसाकी

धर्मश्च द्विविधः प्रोक्तः साध्यसिद्धविभेदतः ॥२१॥
साध्यो धर्मश्च कर्माख्यः सिद्धो ब्रह्म समीरितः।
चत्वारस्तु पुनर्वेदा ऋग्यजुरादिभेदतः ॥२२॥
पादेनार्थेन चोपेता वृत्तबद्धा ऋचो मताः।
वर्जिता वृत्तगीतिभ्यां मन्त्रा यजुष्ट्या मताः ॥२३॥

सहायतासे कर्मज्ञान होनेपर अर्थात् "कर्म विनाशी फल देनेवाले हैं।" ऐसा ज्ञान होने के अनन्तर अविनाशी सुखरूप मोक्षके साधनरूप ब्रह्मज्ञानकी इच्छा उत्पन्न होती है। भगवान् वृत्तिकारका दूसरा वाक्य है— **संहितमेतच्छारीरकं जैमिनीयेन षोडशलक्षणेन पूर्वकाण्डार्थविधायकेनेति** च (बो. वृ.) अर्थ—वेदके पूर्वकाण्डके अर्थके विधान करनेवाले सोलह अध्यायवाले महर्षि श्रीजैमिनिद्वारा प्रणीत पूर्वमीमांसाके साथ यह शारीरकमीमांसा (उत्तरमीमांसा=उत्तरकाण्डार्थविधायक ब्रह्ममीमांसा) सम्मिलित है।" (वैष्णवालङ्कारभाष्य १।१।१)

साध्यधर्म और सिद्धधर्म के भेदसे धर्म दो प्रकार का कहा गया है ॥ २१ ॥

कर्मको साध्यधर्म और ब्रह्मको सिद्धधर्म कहते हैं। ऋग्वेद यजुर्वेद सामवेद और अथर्ववेदके भेदसे वेदके चार भेद और भी माने जाते हैं ॥२२॥

पाद और अर्थसे युक्त वृत्तबद्ध वेद मन्त्रोंको 'ऋग्वेद' कहते हैं। वृत्त (छन्द) और गीतिसे रहित वेदमन्त्रोंको 'यजुर्वेद' कहते हैं ॥२३॥

मन्त्राणां गीतिरूपाणां सामसंज्ञा प्रकीर्त्तिता।
एभिश्च मिश्रितो वेदोऽथर्वसंज्ञामवाप्तवान् ॥२४॥
विधिमन्त्रार्थवादाख्यास्त्रिधा वेदाः पुनर्मताः।
हितानुशासकं वाक्यं विधित्वेन समीरितम् ॥२५॥
अपूर्वादिविभेदेन विधिश्च त्रिविधो मतः।
अज्ञातज्ञापकं वाक्यमपूर्वो विधिरुच्यते ॥२६॥
'व्रीहीन् प्रोक्षतीत्येवद् वाक्यं तत्र निदर्शनम्।
अप्राप्तस्य च पक्षे हि प्रापको नियमो विधिः ॥२७॥
स 'व्रीहीनवहन्ती' त्यादिरूपः परिकीर्त्तितः।

गीतिरूप वेदमन्त्रोंको 'सामवेद' कहते हैं। ऊपर कथित वेदके तीनों प्रकारोंसे मिलित वेदभागको 'अथर्ववेद' कहते हैं ॥२४॥

विधि मन्त्र और अर्थवाद भेदसे वेदके और भी तीन प्रकार हैं। हितानुशासक वेदवाक्यको 'विधि' कहते हैं ॥२५॥

विधिविभाग

विधिके तीन भेद हैं। अपूर्वविधि नियमविधि तथा परिसंख्याविधि। वाक्यान्तरसे अज्ञात अर्थके ज्ञापक वेदवाक्यको 'अपूर्वविधि' कहते हैं ॥२६॥

'व्रीहीन् प्रोक्षति' (व्रीहियोंका प्रोक्षण करे) यह वाक्य अपूर्वविधिका उदाहरण है।

जहाँ पर दो या दो से अधिक पक्ष हों। वहाँ पर एक पक्ष में अप्राप्त अर्थके ज्ञापक वेदवाक्यको 'नियमविधि' कहते हैं ॥२७॥

'व्रीहीन् अवहन्ति' (व्रीहियोंका अवहनन करे) यहाँ पर व्रीहियोंसे

Scanned by CamScanner

उभयोर्युगपत्प्राप्तावितरस्य निवर्त्तकम् ॥२८॥
परिसंख्याविधिः प्रोक्तो मीमांसज्ञैर्विचक्षणैः ।
'पञ्च पञ्चनखा भक्ष्या' इत्येतत् तन्निदर्शनम् ॥२९॥

तुष (छिलके) को दूर करना है । व्रीहियोंसे छिलकोंको नखसे छीलकर भी दूर कर सकते हैं और मुशलसे कूटकर भी दूर कर सकते हैं । नखसे छील कर छिलकोंको व्रीहियोंसे दूर करनेके पक्षमें मुशलसे कूटने की आवश्यकता नहीं रहती है । इसलिये उस पक्षमें मुशल से कूटना (अवहनन) रूप अर्थ अप्राप्त रहता है । उस अवहननरूप अप्राप्त अर्थका 'व्रीहीन् अवहन्ति' यह वाक्य विधान करता है । कि अवहननद्वारा तुषविमोकसे तण्डुलोंमें अपूर्व उत्पन्न होनेसे यज्ञसाधन होनेकी योग्यता होती है । इसलिये अवहननद्वारा ही व्रीहीयोंसे छिलकेको दूर करे । 'व्रीहीन् अवहन्ति' यह वाक्य नियमविधिका उदाहरण है ।

दो कार्योंके एक साथ प्राप्त होने पर इतरके (दो मेंसे एकके) निवर्त्तक वेदवाक्यको मीमांसक लोग 'परिसंख्याविधि' कहते हैं । 'पञ्च पञ्चनखा भक्ष्याः' यह वाक्य परिसंख्याविधिका उदाहरण है । यहाँ पर यह प्रतीत होता है कि 'पाँच पञ्चनख भक्षणयोग्य हैं । परन्तु उक्तवाक्य का यह अर्थ नहीं है ।

'शशकः शल्लकी गोधा खड्गी कूर्मस्तु पञ्चमः ।
भक्ष्यान् पञ्चनखेष्वाहुः .... ॥"

पञ्चनखवाले प्राणियोंमें शशक (खरगोश) शल्लकी (साही) गोह गेंड़ा और कछुवा इन पाँचोंको भक्षण योग्य कहते हैं । यह एक

नित्यादि भेदतस्ते च बहुधा विधयो मताः ।
नित्यविधिश्च सन्ध्योपासनादिविधिरुच्यते ॥३०॥
नैमित्तिकविधिर्जातेष्ट्यादिविधिरुदीरितः ।

स्मृतिकारका वचन है । थोडे परिवर्त्तनके साथ मनुस्मृतिकारने भी इसे स्वीकार किया है ।

अब विचार करना है कि "क्या धर्मशास्त्रकार उक्तरूपसे पाँच पञ्चनखविशिष्ट प्राणियोंके भक्षणका विधान करते हैं ?" यदि विधान करते हैं ? तो कौन सी विधि है ? अप्राप्तके विधान करने में अपूर्वविधि होती है । यह पञ्च पञ्चनखभक्षण तो रागसे प्राप्त है । इसलिये यह अपूर्वविधि नहीं है । एक पक्षमें अप्राप्तके विधान करनेमें नियमविधि होती है । जैसे नखविदलन पक्षमें अवहननकी अप्राप्ति रहती है । इसलिये पक्षमें अप्राप्त अवहननका विधान नियमविधिसे होता है । यहाँ पर तो पञ्चविध पञ्चनखभक्षण तथा पञ्चविधेतर पञ्चनखभक्षण दोनों रागसे प्राप्त ही हैं । अप्राप्त नहीं हैं । इसलिये यहाँ पर नियम विधि नहीं है । किन्तु परिसंख्या विधि ही है । क्योंकि यहाँ पर शशक इत्यादि पञ्चविध पञ्चनखभक्षण तथा शशकादिपञ्चविधसे इतर पञ्चनखभक्षण दोनों ही रागतः प्राप्त हैं । उनमेंसे शशकादिपंचविधेतर पंचनखभक्षणकी निवृत्तिका ही '**पञ्च पञ्चनखा भक्ष्याः**' यह वाक्य विधान करता है । अतः शशकादिपञ्चविध पञ्चनखवाले प्राणियोंके भक्षणका यह वाक्य विधान नहीं करता है ॥२९॥

नित्यविधि इत्यादि भेदोंसे विधियाँ बहुत प्रकारकी हैं । संध्योपासनविधिको 'नित्यविधि' कहते हैं ॥३०॥

Scanned by CamScanner

काम्यविधितया चाथ ज्योतिष्टोमविधिर्मतः ॥३१॥
प्रयोग समवेतार्थस्मारको मन्त्र उच्यते ।
मन्त्रत्वेन मतं वाक्यमग्निमीडे पुरोहितम् ॥३२॥
स्तुतिनिन्दापरं वाक्यमर्थवादतया मतम् ।
स्तुतिवाक्यं हि 'वायुर्वै क्षेपिष्ठा देवता यथा ॥३३॥
'सोऽ रोदीदिति वाक्यं हि निन्दाविधायकं तथा ।
गुणवादादिभेदेन ह्यर्थवादस्त्रिधा पुनः ॥३४॥
'आदित्यो यूप, इत्येतद् गुणवादतया मतम् ।
अनुवादतया प्रोक्त 'श्चाग्निर्हिमस्य भेषजम्' ॥३५॥

जातेष्टिआदि विधियोंको 'नैमित्तिकविधि' कहते हैं। ज्योतिष्टोम आदि विधि 'काम्यविधि' कही जाती हैं ॥३१॥

मन्त्र

प्रयोगसमवेत अर्थके स्मारकको 'मन्त्र' कहते हैं । 'अग्निमीडे पुरोहितम्' यह वेदवाक्य मन्त्र है ॥३२॥

अर्थवाद

स्तुतिपरक तथा निन्दापरक वाक्योंको 'अर्थवाद' कहते हैं । 'वायुर्वै क्षेपिष्ठा देवता' यह वाक्य स्तुतिपरक होनेसे अर्थवाद है ॥३३॥

'सोऽरोदीत्' यह वाक्य निन्दाविधायक होनेसे 'अर्थवाद' है। गुणवाद आदि भेदसे अर्थवाद तीन प्रकारका है ॥३४॥

'आदित्यो यूपः' यह वाक्य गुणवादरूप अर्थवाद है । 'अग्निर्हिमस्य भेषजम्' यह वाक्य अनुवादरूप अर्थवाद है ॥३५॥

उक्तो भूतार्थवादो हि 'वज्रहस्तः पुरन्दरः' ।
परकृतिपुराकल्पावर्थवादतया मतौ ॥३६॥
पुराकल्पस्तु विज्ञेयश्चैतिह्याचरितो विधिः ३७॥
शिक्षादीनि षडङ्गानि वेदस्याथ मतानि हि ।
स्वरव्यञ्जनवर्णानां तत्स्थानानां तथैव च ॥३८॥
वेदाङ्गेषु च सर्वेषु शिक्षैव प्रतिपादिका ।
व्याकरणं पदानां हि साधुत्वस्यानुशासकम् ॥३९॥
गायत्र्यनुष्टुभादीनि छन्दस्त्वेन मतानि हि ।
निरुक्तं श्रौतवाक्यानामर्थानां प्रतिपादकम् ॥४०॥
यज्ञाध्ययनकालस्य ज्योतिषं प्रतिपादकम् ।

'वज्रहस्तः पुरन्दरः' यह वाक्य भूतार्थवादरूप अर्थवाद है। परकृति और पुराकल्प अर्थवादरूपसे माने गये हैं ॥३६॥

अन्यकी व्याहतविधिके वादको 'परकृति' कहते हैं । ऐतिह्याचरित विधिको 'पुराकल्प' कहते हैं ॥३७॥

वेदके अङ्ग

वेदके शिक्षा आदि छ अङ्ग हैं । वेदके छ अङ्गोंमें 'शिक्षा ही स्वर तथा व्यञ्जन वर्णोंकी तथा उनके कंठादि स्थानोंकी प्रतिपादन करनेवाली है। पदोंके साधुत्वका अनुशासन करनेवाला 'व्याकरण' है ॥३८॥३९॥

गायत्री अनुष्टुभ् आदि 'छन्द' माने गये हैं। श्रौतवाक्योंके अर्थोंका प्रतिपादन करनेवाला 'निरुक्त' है ॥ ४०॥

Scanned by CamScanner

यज्ञादेस्तु प्रयोगस्य कल्पः प्रतिपादको मतः ॥४१॥
प्रामाण्यं साङ्गवेदस्य स्वत एव मतं बुधैः ।
उपपत्तिर्न चैतस्य नैवं वाच्यं कुतो यतः ॥४२॥
प्रामाण्यं वाक्यमात्रस्य स्वभावात् स्वत् एव हि ।
सति बाधे तु तन्नैव बाधो दोषान्मतो बुधैः ॥४३॥
अनाप्तोच्चरितत्त्वं हि वाक्यस्य दूषणं मतम् ।
अप्रामाण्यं हि वाक्यस्य स्वीकृतं परतस्ततः ॥४४॥
वाक्यस्य गुणजिज्ञासा दोषशङ्कास्थले मता ।
नित्ये वेदे च दोषास्तु वक्तृभावान्न सम्मताः ॥४५॥

यज्ञ और अध्ययनके कालका प्रतिपादक 'ज्योतिष' है । यज्ञादिके प्रयोगके प्रतिपादकको 'कल्प' कहते हैं ॥४१॥

वेदप्रामाण्य

विद्वानोंने स्वीकार किया है कि—'अङ्गसहित वेदोंका प्रामाण्य स्वतः ही है अन्यसे नहीं है ।' 'इस कथनकी उपपत्ति नहीं हो सकती' ऐसा नहीं कह सकते हैं क्योंकि वाक्यमात्रका प्रामाण्य स्वतः ही होता हैं । यदि बाध हो तो वह (प्रमाण्य) नहीं हो सकता है । और वाक्यमें दोष होनेसे ही विद्वान् लोग बाध मानते हैं ॥४२॥४३॥

वाक्यका दोष अनाप्तोच्चरितत्व माना गया है । अर्थात् अयथार्थवक्तासे उच्चारण किया गया वाक्य दोषवाला माना जाता है । इसलिये वाक्यका अप्रामाण्य परसे स्वीकार किया गया है ॥ ४४ ॥

जहाँ पर दोषकी शङ्का होती है वहीं पर वाक्यके गुणकी जिज्ञासा (जाननेकी इच्छा) होती है । ऊपर कहा जा चुका है कि 'वेद नित्य हैं ।' इसलिये वेदोंका कोई वक्ता नहीं है । इसलिये वेदोंमें दोष नहीं माना गया है । क्योंकि वक्तामें दोष होनेसे ही वाक्योंमें दोष होता है ॥ ४५ ॥

तस्माद् वेदस्य प्रामाण्यं स्वतएव बुधैर्मतम् ।
प्रमाणं लौकिकं वाक्यं दोषैर्विरहितं तथा ॥४६॥
वक्तृवक्तृकृतत्वाभ्यां वाक्यं द्विधा मतं ततः ।
आद्यं लौकिकं ज्ञेयमन्त्यं वेदाभिधं किल ॥४७॥
वेदस्येश्वरकर्तृत्वं नित्यत्वश्रुतिबाधितम् ।
विपक्षे बाधकाभावात् तल्लिङ्गं चाप्रयोजकम् ॥४८॥

इसलिये विद्वानोंने वेदका स्वतःप्रामाण्य माना है । दोषोंसे रहित लौकिक वाक्य भी प्रमाण ही हैं ॥ ४६ ॥

वाक्यविभाग

इसलिये वाक्य दो प्रकारके हैं । सवक्तृक और अवक्तृक । जिनका उच्चारण करनेवाला कोई वक्ता है वे सवक्तृक अर्थात् सकर्तृक हैं । लौकिकवाक्य सकर्तृक हैं । वक्ता के उच्चारण किये बिना ही जो वाक्य अनादिकालसे स्थित हैं वे अवक्तृक अर्थात् अकर्तृक हैं । वेद वाक्य अकर्तृक हैं ॥ ४७ ॥

'वेद ईश्वरकर्तृकोऽस्मदाद्यकर्तृकत्वे सति सकर्तृकत्वात्' (वेद ईश्वरकर्तृक है क्योंकि वेद सकर्तृक है परन्तु उसके कर्ता हम लोग नहीं हैं ।) इस प्रकारका अनुमानप्रमाणसे सिद्ध किया हुआ वेदका ईश्वरकर्तृकत्व नित्यत्वबोधक 'वाचा विरूप नित्यया' इत्यादि श्रुतियोंसे बाधित है । क्योंकि विपक्षमें बाधक न होनेसे उक्त अनुमानका

Scanned by CamScanner

वाक्यं पदसमूहो हि शक्तं च पदमुच्यते ।
योगिकादिविभेदेन पदं चतुर्विधं मतम् ॥४९॥
अवयवार्थबोधस्य जनकं यौगिकं पदम् ।
पाचकादि पदं लोके यौगिकत्वेन सम्मतम् ॥५०॥
रूढं समूहशक्त्यैव बोधस्य जनकं पदम् ।

हेतु अप्रयोजक है अर्थात् अनुकूलतर्करहित है । इसलिये वह वेदमें ईश्वरकर्तृकत्व सिद्ध नहीं कर सकता है ॥ ४८ ॥

पद तथा पदका विभाग

इस शब्दप्रमाणपरिच्छेदके प्रथम श्लोकमें कहा जा चुका है कि 'अनाप्तसे अनुक्त वाक्यसे उत्पन्न हुई वाक्यार्थबुद्धिको 'शाब्दीप्रमा' कहते हैं । इस लक्षणमें रहे हुए वाक्यका क्या लक्षण है ? इस शङ्काकी निवृत्ति के लिये कहा गया है कि "पदसमूह को 'वाक्य' कहते हैं ।" शक्तको अर्थात् निरूपकतासम्बन्ध से शक्तिविशिष्टको 'पद' कहते हैं । घट पदकी शक्ति घटरूप अर्थमें है । उस घटनिष्ठ शक्तिका (वाच्यवाचकभाव सम्बन्धका) निरूपक घटरूप पद है । इसलिये निरूपकतासम्बन्धसे शक्तिविशिष्ट 'घट' यह पद है । यौगिक इत्यादि भेदसे पद चार प्रकारका माना गया है ॥ ४९ ॥

प्रकृति और प्रत्ययरूप अवयवोंके अर्थ (वाच्य) के बोधके जनक पदको 'यौगिकपद' कहते हैं । पच धातुसे ण्वुल् प्रत्यय करने पर पाचक शब्द बनता है । इसलिये अवयवार्थबोधजनक होनेसे पाचक पद 'यौगिक' है ॥ ५० ॥

समुदायशक्तिसे अर्थबोधजनक पदको 'रूढ' कहते हैं । मण्डप

मण्डपादिपदं लोके रूढत्वेन मतं बुधैः ॥५१॥
उभयविधया शक्त्या बोधकं योगरूढकम् ।
पङ्कजादिपदं प्रोक्तं योगरूढं विचक्षणैः ॥ ५२ ॥
स्वातन्त्र्येण च बोधो हि यत्रार्थयोर्द्वयोरथ ।
यौगीकरूढता तस्मिन्नुद्भिदादिपदे खलु ॥ ५३ ॥
आकांक्षा योग्यताऽऽसत्तितात्पर्यवेदनं मतम् ।
कारणं शाब्धबोधे हि शाब्दबोधविशारदैः ॥ ५४ ॥

इत्यादि पद रूढ़ माने गये हैं ।५१॥

उक्तदोनों प्रकारकी अर्थात् योगशक्ति और रूढ़ि शक्ति दोनोंसे अर्थबोधक पदको 'योगरूढ' कहते हैं । 'पङ्काज्जायते इति पङ्कजम् (जो पंकसे उत्पन्न हो वह पंकज है।) इस व्युत्पत्तिके बलसे पंकसे उत्पन्न होनेसे योगशक्तिसे कमलको पंकज कहते हैं । परन्तु पंकसे उत्पन्न तो कुमुद और शैवाल आदि भी हैं । वे भी पंकजपदवाच्य न हो जावें इसलिये यहाँ पर रूढ़िशक्ति भी मानते हैं । इसलिये रूढ़ होनेसे पंकजपदका कमल ही अर्थ होता है कुमुद और शैवाल नहीं ॥५२॥

जहाँ पर स्वतन्त्ररूपसे यौगिक और रूढ दोनों अर्थोंका बोध होता है । उसे 'यौगिकरुढ़' पद कहते हैं । उद्भिद् पद 'यौगिकरुढ़' है । क्योंकि 'उद्भिद्यते ऽनेनेति उद्भित्' इस व्युत्पत्तिसे उद्भित्पद योगशक्ति से खनित्र (कोदाली) का स्वतन्त्र वाचक है और रुढिशक्तिसे उद्भित् पद यागविशेषका स्वतन्त्र वाचक है ॥५३॥

शब्दबोधहेतु

शाब्दबोधप्रवीण पुरुषोंने आकांक्षा योग्यता आसत्ति (सन्निधि) तथा

Scanned by CamScanner

अन्वयानुभवाहेतुर्यत्पदं यत्पदं विना ।
तेन तस्य मताकांक्षा शाब्दबोधविचक्षणैः ॥ ५५ ॥
ततो गौः पुरुषो ऽस्तीति वाक्यस्य नो प्रमाणता ।
न ह्यत्र विद्यते यस्मादाकांक्षा शाब्दबोधकृत् ॥ ५६ ॥
कथिता शाब्दबोधज्ञैरर्थाबाधश्च योग्यता ।
वह्निना सिञ्चतीत्येतदप्रमाणं हि तां विना ॥ ५७ ॥
पदयोरन्वयस्याथ प्रतियोग्यनुयोगिनोः ।

तात्पर्यके ज्ञानको शब्दबोधमें कारण माना है ॥ ५४

जो पद जिस पदके बिना अन्वय (सम्बन्ध) के ज्ञानका कारण नहीं होता है । शाब्दबोधके पण्डितोंने उस पदके साथ उस पदकी 'आकांक्षा' मानी है ॥५५॥

इसलिये 'गौः पुरुषोऽस्ति' (गाय पुरुष है) यह वाक्य प्रमाण रूप नहीं है । क्यों कि इसमें शाब्दबोधोत्पादक आकांक्षा नहीं है ॥ ५६ ॥

शाब्दबोधके ज्ञानियोंने अर्थाबाधको (अर्थके बाधित न होनेको) 'योग्यता' कहा है । 'वह्निना सिञ्चति' (अग्निसे सींचता है) यह वाक्य प्रमाण नहीं है क्योंकि इसमें अर्थके बाधित होनेसे योग्यता नहीं है ॥ ५७ ॥

अन्वय अर्थात् सम्बन्धके प्रतियोगी और अनुयोगी पदोंकी व्यवधानरहित (अविलम्बित) उपस्थिति (स्मृति) को 'आसत्ति' कहते हैं । एक साथमें उच्चारित नहीं किये हुए अर्थात् प्रहर प्रहरके विलम्बसे

आसत्तिरव्यवायेन कीर्त्तितोपस्थितिर्हि या ॥ ५८ ॥
आनय धेनुमित्यदीन्यसहोच्चारितानि तु ।
पदानि न प्रमाणं हि चासत्तिर्विरहादिह ॥ ५९ ॥
वक्तुरिच्छैव तात्पर्यं वाक्यस्योच्चारणे ततः ।
सैन्धवमानयेत्यादावश्वलवणयोर्मतिः ॥ ६० ॥

उच्चारित किये हुए 'धेनुम् और आनय' पद प्रमाणरूप नहीं हैं क्योंकि उनमें आसत्ति (सन्निधि) नहीं है । 'घटम्' इसमें दार्शनिक लोग घट और अम् दो पद मानते हैं । घटका अर्थ है घट (घडा) और अम् का अर्थ है कर्मत्व । घट और कर्मत्व दोनोंका सम्बन्ध है 'निष्ठत्व' । किसीमें उस सम्बन्धसे रहनेवाले पदार्थको सम्बन्धका 'प्रतियोगी' कहते हैं । जिसमें रहे उस अधिकरणरूप पदार्थको 'अनुयोगी' कहते हैं । यहाँ पर कर्मत्व निष्ठत्वसम्बन्धसे घटमें रहता है । इसलिये निष्ठत्व का प्रतियोगी कर्मत्व है और अनुयोगी घट है । इसलिये 'घटम्' का शाब्दबोध हुआ 'घटनिष्ठ कर्मत्वम्' अर्थात् घटानुयोगिकनिष्ठत्वप्रतियोगि कर्मत्वम् । इसी प्रकार अन्यत्र भी जानना चाहिये ॥ ५८ ॥ ५९ ॥

वाक्यके उच्चारणमें वक्ताकी इच्छाको 'तात्पर्य' कहते हैं । इसलिये सैन्धवमानय (सैन्धवको ला) इसवाक्यसे 'घोडाको ला' और 'लवणको ला' इन दोनों अर्थोंका बोध होता है । ऐसे स्थलोंमें वक्ताके वाक्योच्चारणका तात्पर्य जाना जाता है । यदि वक्ताने यात्राके समयमें कहा कि 'सैन्धवमानय' तो घोडा लाना चाहिये । क्योंकि यात्राके प्रसङ्गमें वक्ताके सैन्धवशब्दका तात्पर्य घोडेमें है । और यदि

Scanned by CamScanner

वेदे चापौरुषेयेऽस्ति तात्पर्यमीश्वरस्य हि ।
ईशशासनरूपो हि नित्यो वेदो यतो मतः ॥ ६१ ॥
शास्त्राणि च प्रमाणानि वेदवद् वैदिकानि हि ।
वैदिकता च शास्त्रेषु वेदविद्याविशारदैः ॥६२॥
वैदिकार्थविरुद्धार्थाप्रतिपादकता मता ।
तथा चाप्तप्रणीता ही प्रमाणं वैदिकी स्मृतिः ॥६३॥
मन्वादिकाविरुद्धांशे सांख्यादेर्हि प्रमाणता ।
तत्कर्तॄणां मता यस्मात् प्राकृतगुणवश्यता ॥६४॥

भोजनप्रसङ्गमें कहे कि 'सैन्धवमानय' तो लवण लाना चाहिये क्योंकि उस समय सैन्धवशब्दका तात्पर्य लवणमें होता है घोडेमें नहीं ॥६०॥

वेद अपौरुषेय है । अर्थात् वेद किसी भी वक्ताका वाक्य नहीं है। तो भी वेदमें ईश्वरका तात्पर्य है । क्योंकि ईश्वरने सृष्टिके समय पूर्वकल्पीय वर्णानुपूर्वीविशिष्ट वेदका उच्चारण किया है । इसलिये वेद ईश्वरका शासनरूप और नित्य माना गया है ॥ ६१ ॥

प्रामाणिकशास्त्र

वेदके समान ही वैदिक शास्त्र भी प्रमाण हैं । वैदिक अर्थात् वेदसे प्रतिपादित अर्थसे विरुद्ध अर्थके अप्रतिपादकत्वको ही वेदविद्याके विद्वानोंने शास्त्रोंकी वैदिकता मानी है । इसलिये आप्तपुरुषों द्वारा प्रणीत वैदिकस्मृति भी प्रमाण है ॥ ६२ ॥ ६३ ॥

सांख्य आदि स्मृतियोंका (दर्शनोंका) मन्वादि स्मृतियोंसे अविरुद्ध अंशमें ही प्रमाण है । क्योंकि सांख्यादि स्मृतियोंके कर्त्ता कपिलादि प्रकृतिके सत्त्व रजस् और तमो गुणके अधीन हैं । इसलिये तत्त्वके

(सिद्धान्तके) क्वचित् विरूद्ध हो जानेसे विरूद्ध अंशमें अप्रमाणता ही है । यतिसार्वभौम भगवान् श्रीरामानन्दाचार्यजी ने ब्रह्मसूत्रोंके आनन्द भाष्यमें कहा है कि——अयम्भावः । द्वयोः स्मृत्योः परस्परं विरोधे सत्येकस्या अवकाशेऽपरस्या अनवकाशता च स्पष्टैव । नच प्रतिपाद्यविषयभेदान्नानवकाशता । मन्वादिस्मृतयो हि कर्म-स्वरूपं दर्शयन्त्यः स्वांशे प्रसरतामुपलभन्ते । सांख्यादिस्मृत-यश्च मोक्षमधिकृत्य प्रवर्त्तमानाः स्वकीय प्रतिपाद्यांशे साव-काशा इति कथमनवकाशत्वमितिवाच्यम् । कर्मणामपि परम-पुरुषार्थसाधनत्वं भगवदाराधनौपयिकतयेति राद्धान्तः । 'यतः प्रवृत्तिर्भूताना' मित्यादिभगवद्वचनमेवात्र प्रमाणम् । तथा च तदभिधायिनीनां स्मृतीनामस्त्येव समानविषयत्वम् । एव-ञ्चैतस्या अनवकाशत्वं सुतरामापन्नम् । तदेवं परस्परं विरोधे श्रुत्यविरुद्धा स्मृतिः प्रमाणमित्याह जैमिनिः "विरोधे त्वन-पेक्ष्यं स्यादसति ह्यनुमानम्" (जै. सू. १ । ३ । ३ ।) प्रत्य-क्षश्रुतिविरोधे सति स्मृतिवाक्यमुपेक्ष्यमनादरणीयम-सति श्रुतिविरोधे स्मृतिमूलभूतं श्रुतिवाक्यमनुमेयमिति तदर्थः । एवञ्चापक्षीणसांख्यस्मृतिर्हेयैव श्रुतिविरुद्धत्वात् "ऋषिं प्रसूत" मित्यादि श्रुतिर्हि सांख्यकर्तृकपिलान्यकपिलर्षि-विषयावगन्तव्येति न काचिदनुपपत्तिः । श्रुतिप्रतिपादितस्य भगवतः कपिलस्य श्रुतिविरुद्धार्थप्रतिपादकत्वानुपपत्तेरिति सर्वं समञ्जसम् । ननु योगेन साक्षात्कृततत्त्वस्वरूपैः कपिला-दिभिर्योऽर्थो व्यवस्थापितः सएवार्थोऽन्यैर्मन्वादिभिरप्यङ्गीक्रियत

Scanned by CamScanner

इति कथं मन्वादिस्मृतीनामेव वेदानुसारित्वमित्याशंकायामाह- 'इतरेषाञ्चानुपलब्धेः ।' (ब्र. सू. २ । १ । २) इतरेषां वेदार्थयाथात्म्यविदां " यद्वै मनुरवदत् तद् भेषजम्" (तै. सं. २ । २ । १० । २) इत्यादिश्रुत्या भेषजवज्जगद्धिताय प्रवचनकर्तॄणां मन्वादीनां प्रधानकारणवादित्वानुपलब्धेः । अतः श्रुतिविरुद्धत्वात्तदनुसारिमन्वादिस्मृतिविरुद्धत्वाच्च कपिलादिस्मृतेर्भ्रान्तिमूलकत्वनिश्चयेनाप्रामाण्यान्न ताभिर्वेदान्तसमन्वयः शक्यो बाधितुमिति (आनन्दभाष्य २ । १ । २)

इसका तात्पर्य यह है । दो स्मृतियोंके परस्पर विरोध प्राप्त होने पर एकके सावकाश होनेसे दूसरी स्पष्ट ही अनवकाश होती है । "प्रतिपाद्य विषयके भेद होनेसे अनवकाशता नहीं होती है किन्तु सावकाशता ही होती है । मन्वादि स्मृतियाँ कर्मके स्वरूपका बोध कराती हुई स्वांशमें अवकाशताको प्राप्त हैं हो । मोक्षको उद्देश्यमें रखकर प्रवृत्त हुई सांख्यादि स्मृतियाँ अपने विषयके प्रतिपादन अंशमें सावकाश हैं । इसलिये अनवकाशता कहाँ है ?" इस प्रकार नहीं कह सकते हैं । क्योंकि "भगवदाराधनके अनुगुण होनेसे कर्म भी परमपुरुषार्थ (मोक्ष) के साधन हैं ।" यह वेदान्तका सिद्धांत है । इसमें 'यतः प्रवृत्तिर्भूतानाम्' (जिससे भूतामात्रकी प्रवृत्ति होती है ।) इत्यादि गीतामें कहे हुए भगवद्वचन ही प्रमाण हैं । इसलिये उन मोक्षसाधनरूप कर्मोंका कथन करनेवाली मन्वादि स्मृतियोंका सांख्यादि स्मृतियोंके साथ एक विषयता होनेसे मनुस्मृतिकी अनवकाशता है ही । इस प्रकार "परस्पर विरोध प्राप्त होने पर श्रुतिसे

विपर्ययाच्च तत्त्वस्य विरुद्धांशेऽप्रमाणता ।
वेदोपबृंहणं चात्र रामायणं च भारतम् ॥६८॥

अविरुद्ध स्मृति प्रमाण होती है ।" इस बातको महर्षि जैमिनि पूर्वमीमांसा में कहते हैं कि—"विरोधे त्वनपेक्ष्यं स्यादसति ह्यनुमानम्" (जै० सू० १ । ३ । ३) अर्थ-प्रत्यक्ष श्रुतिका विरोध प्राप्त होने पर स्मृति वाक्य अनादरणीय होता है । श्रुतिके विरोध न होने पर तो स्मृतिके मूलभूत श्रुतिवाक्यका अनुमान किया जाता है । इस प्रकार श्रुतिसे विरुद्ध होनेसे अपक्षीण हुई सांख्यस्मृति त्यागने लायक ही है । "ऋषिं प्रसूतं कपिलं" यह श्रुति तो सांख्यके कर्त्ता कपिलसे अतिरिक्त श्रीमद्भागवतपुराणोक्त कपिल ऋषि विषयक है । इसलिए कोई आपत्ति नहीं है । क्योंकि श्रुतिप्रतिपादित भगवान् कपिलका श्रुतिविरुद्धार्थप्रतिपादकत्व सिद्ध नहीं हो सकता है । इसलिये सब उचित है ।

यहाँ पर शंका होती है कि—योगके द्वारा तत्त्वोंका साक्षात्कार करनेवाले कपिलादि महर्षियोंने जिन प्रधानकारणत्व आदि अर्थोंको व्यवस्थित किया है मन्वादि भी उन्हीं को मानते हैं । तो फिर मन्वादिस्मृतियोंको ही क्यों वेदानुसारिणी कहा जाता है ?

इसके उत्तरमें भगवान् बादरायणजी कहते हैं—इतरेषाञ्चानुपलब्धेः (ब्र० सू० २।१।२) वेदके यथार्थतत्त्वको जाननेवाले "यद्वै मनुरवदत् तद् भेषजम्" इत्यादि श्रुतिसे प्रतिपादित भेषजतुल्य जगत्के हितके लिये प्रवचन करनेवाले अन्य मन्वादि ऋषियोंको प्रधानकारणवादके उपलब्ध न होनेसे । इसलिये श्रुतिविरुद्ध होनेसे

Scanned by CamScanner

प्रामाण्यं तु स्वतःसिद्धं तयोश्चापि बुधैर्मतम् ।
एते च सम्मते प्राज्ञैर्ब्रह्मभागोपबृंहणे ॥६६॥
मतं तु धर्मशास्त्रं तैः कर्मभागोपबृंहणम् ।
वेदशास्त्राविरोधी हि प्रमाणं न्यायविस्तरः ॥६७॥
पुराणं ब्रह्मभागोपबृंहणं बुधसम्मतम् ।
सात्त्विकादिविभेदेन पुराणं त्रिविधं मतम् ॥६८॥

और श्रुत्यनुसारी मन्वादि स्मृतियोंसे विरुद्ध होनेसे भ्रान्तिमूलकताके निश्चयसे कपिलादिस्मृतियोंके अप्रमाणित होनेसे उन कपिलादिस्मृतियोंके द्वारा वेदांतका समन्वय बाधित करनेयोग्य नहीं है।'

रामायण और महाभारत वेदके उपबृंहण (स्पष्टीकरण) हैं। विद्वानोंने इन दोनोंके प्रामाण्यको भी स्वतः सिद्ध माना है। विद्वानोंने इन दोनोंको वेदके ब्रह्मप्रतिपादक भागका उपबृंहण माना है ॥६४॥ ६५॥ ६६ ॥

धर्मशास्त्रको वेदके कर्मप्रतिपादकभागका उपबृंहण माना गया है। वेदशास्त्रका अविरोधी न्यायविस्तार (दर्शन) भी प्रमाण है ॥६७॥

पुराणको भी विद्वानोंने वेदके ब्रह्मप्रतिपादकांशका उपबृंहण माना है। पुराणमें सर्ग प्रतिसर्ग वंश मन्वन्तर और वंश्यानुचरित नामक पांच सर्ग होते हैं। सात्विक राजस और तामस के भेदसे पुराण तीन प्रकारका है। पद्मपुराणमें कहा है कि—

वैष्णवं नारदीयं च तथा भागवतं शुभम् ।
गारुडं च तथा पाद्मं वाराहं शुभदर्शने ॥

तस्य वेदाविरुद्धांशे स्वीकृता हि प्रमाणता ।
भगवत्कथितत्वाच्च वेदानामविरोधतः ॥६९॥
कृत्स्नः प्रमाणतां यातः पञ्चरात्रागमः शुभः ।

सात्विकानि पुराणानि विज्ञेयानि शुभानि वै ॥
ब्रह्माण्डं ब्रह्मवैवर्तं मार्कण्डेयं तथैव च ।
भविष्यं वामनं ब्राह्मं राजसानि निबोधत ॥
मात्स्यं कौर्मं तथा लैङ्गं शैवं स्कान्दं तथैव च ।
आग्नेयं च षडेतानि तामसानि निबोधत ॥

मत्स्यपुराणमें कहा है कि सात्विकपुराणोंमें भगवान् हरिका माहात्म्य अधिक कहा गया है। राजस में ब्रह्मा जी आदिका और तामस में अग्नि और शिवजीका माहात्म्य अधिक कहा गया है ॥६८॥

वेदाविरूद्ध अंशमे पुराणकी प्रमाणता स्वीकार की गई है। भगवत्कथित होनेसे तथा वेदाविरोधी होनेसे समस्त पञ्चरात्र आगम प्रमाण है। यतिसार्वभौम भगवान् श्रीरामानन्दाचार्य जी ने उत्पत्त्यसम्भवाधिकरणके आनन्दभाष्य में कहा है कि—

" एवं केवलाधिष्ठात्रीश्वरकारणवादत्य शैवविशेषस्य पाशुपतमतस्य श्रुतिविरुद्धत्वादसामञ्जस्यमुक्तम् । तन्निराकरणेन च पञ्चरात्रप्रतिपाद्यवैष्णवमतं मतिस्थमापद्यते । इति तत्र विचारः क्रियते । तत्र भागवतमतस्य सामञ्जस्यमस्ति न वेत्याद्या विप्रतिपत्तिस्तदर्थं तदभिधायकपञ्चरात्रतन्त्रस्य सर्वथा-

Scanned by CamScanner

ऽप्रामाण्यमुतांशिकाप्रामाण्यमाहोस्वित् कात्स्न्र्येन प्रामाण्यमेवेति संशयः। तदर्थमपि केषाञ्चित् पाञ्चरात्रिकाणां वचनानां जीवोत्पत्तौ तात्पर्यमस्ति न वेति च विशयः।

तत्र पाञ्चरात्रिकाणां केषाञ्चिदपि वचनानां जीवोत्पत्तौ तात्पर्यं स्यात्तर्हि तेषामसम्भवार्थाभिधायकत्वेनांशिकमप्रामाण्यमपि पञ्चरात्रस्य दुर्वारं स्यात् तथा सति तन्मूलकस्य वैष्णवमतस्याप्यसामञ्जस्यं सुतरां समापन्नं स्यादिति मनसि निधाय पूर्वपक्षयति अस्यैव "परमकारणात् परब्रह्मभूतात् सङ्कर्षणो नाम जीवो जायते सङ्कर्षणात् प्रद्युम्नसंज्ञं मनो जायते तस्मादनिरुद्धसंज्ञोऽहङ्कारो जायते" (परमसंहिता) इत्यादिप्रक्रियाप्रतिपादकवचसां जीवोत्पत्तौ तात्पर्यमिति।

तत्र सिद्धान्तयति—उत्पत्त्यसम्भवादिति। नैषां पाञ्चरात्रिकाणां वचनानां जीवोत्पत्तौ तात्पर्यम्। कुतः? जीवोत्पत्तेरसम्भवस्तस्मादिति। जीवोत्पत्तिः श्रुतिषु नोपलभ्यते। प्रत्युत श्रुतयो जीवस्यानादित्वं नित्यत्वं चामनन्ति। "न जायते म्रियते वा विपश्चित्" (का. २।१८) ज्ञाज्ञौ द्वावजावीशानीशौ" (श्वे. १।९) "नित्यो नित्यानाञ्चेतनश्चेतनानाम्" (श्वे. ६।१३) "अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते" (का० २।८) इति। तस्मान्नैषां पाञ्चरात्रिकाणां वचनानां जीवोत्पत्तौ तात्पर्यम्। तथा चासम्भवार्थानभिधायकत्वान्नांशिकमपि पंचरात्रस्याप्रामाण्यमिति तन्मूलकस्य वैष्णवमतस्यापि नासामञ्जस्यम्।

(आनंदभाष्य २।२।४२)

वैखानसागमस्यापि तत एव प्रमाणता ॥७०॥
तथाऽऽचार्यनिबन्धाश्च कृता बोधायनादिभिः।
रामानन्दयतीन्द्रेण प्रणीतं दोषवर्जितम् ॥७१॥

अब शंका यह होती है कि—यदि पञ्चरात्रागमका जीवोत्पत्तिमें तात्पर्य नहीं है। तो "वासुदेवात्संकर्षणो नाम जीवो जायते" इत्यादि पञ्चरात्रके वचनोंका तात्पर्य किसमें है? इस शंकाका समाधान भगवान् भाष्यकारने "विज्ञानादिभावे वा तदप्रतिषेधः" (ब्र. सू. २।२।४४) इस सूत्र के आनन्दभाष्यमें किया है कि—'व्यूहरूपको प्राप्त हुए संकर्षण आदि परब्रह्म ही हैं। इसलिये भगवान् वासुदेव स्वेच्छासे संकर्षणावतार ग्रहण करते हैं।' यही उक्त वचनोंका तात्पर्य है। संकर्षण प्रद्युम्न और अनिरुद्ध क्रमशः जीव मन और अहंकारके अधिष्ठाता हैं। इसलिये उन्हें जीव मन और अहंकार शब्दों द्वारा कहा गया है। अधिक जाननेकी इच्छावालोंको उत्पत्त्यसम्भवाधिकरणका आनन्दभाष्य अथवा मेरा अधिकरणरत्नमालानामक ग्रन्थ देखना चाहिये। पाद्मतन्त्रके प्रथमाध्यायमें संवर्त्तने पञ्चरात्रकी १०८ संहिताओंका वर्णन किया है।

वेदाविरूद्ध होनेसे तथा भगवत्कथित होनेसे वैखानस आगम भी प्रमाण ही है ॥ ६८ ॥ ६९ ॥ ७० ॥

भगवान् श्री पुरुषोत्तमाचार्य बोधायन इत्यादि आचार्यों द्वारा विरचित श्रीबोधायनवृत्ति साधनदीपिका श्रीरामप्रापिपद्धति श्रौतसिद्धान्तविन्दु चिदात्मप्रबोध सिद्धान्तविजय आदि निबन्ध तथा श्रीरामानन्दाचार्ययतीन्द्रप्रणीत दोषरहित आनन्दभाष्यनामक प्रस्थानत्रय अर्थात् ब्रह्मसूत्र

Scanned by CamScanner

प्रस्थानत्रयभाष्यं च ह्यानन्दभाष्यनामकम् ।
श्रीवैष्णवमताब्जस्य भास्करश्च मनोरमः ॥७२॥
द्वाराचार्यनिबन्धाश्च श्रीसम्प्रदायरक्षकाः ।
धार्मिका अन्यग्रन्थाश्च प्रमाणत्वेन सम्मताः ७३॥
शाब्दबोधफलं तत्र करणं पदमतिर्मता ।
वृत्त्या हि पदजन्यार्थस्मृतौ व्यापारता खलु ॥७४॥
वृत्तित्वेन हि सम्प्रोक्तः सम्बन्धश्च पदार्थयोः ।
मुख्यामुख्यविभेदात्तु वृत्तिर्द्विधा प्रकीर्तिता ॥७५॥
शक्तिस्तु मुख्यवृत्तिर्हि सैवाभिधेतिनामिका ।
ईश्वरेच्छास्वरूपा सा संकेतो वा बुधैर्मतः ॥७६॥

गीता और उपनिषदोंके तीनों भाष्य और मनोहर श्रीवैष्णवमताब्ज-भास्कर द्वाराचार्यनिबन्ध तथा श्रीसम्प्रदायकी रक्षाकरनेवाले अन्य-धार्मिक ग्रन्थ भी प्रमाण रूपसे माने गये हैं ॥ ७१ ॥ ७२ ॥ ७३ ॥

शाब्दबोध फल (कार्य) है । उसमें पदज्ञान करण है और वृत्ति-द्वारा पदजन्य पदार्थस्मृति व्यापार है ॥ ७४ ॥

शब्दवृत्ति

पद और अर्थ (वाच्यपदार्थ) का सम्बन्ध ही 'वृत्ति' है । वृत्ति दो प्रकार की है—मुख्या और अमुख्या ॥ ७५ ॥

शक्ति

मुख्यवृति 'शक्ति' है । उसका 'अभिधा' नाम भी है 'अस्मात् पदादयमर्थो बोद्धव्यः' (इस पदसे यह अर्थ जानना चाहिये ।) अथवा 'एतत् पदममुमर्थं बोधयेत्' (यह पद अमुक अर्थका बोध करे)

अस्माच्छब्दादयं चार्थो बोद्धव्य इति रूपवान् ।
अमुमर्थं पदञ्चैतद् बोधयेदिति वा स च ॥७७॥
आधुनिकस्तु संकेतः परिभाषा प्रकीर्तिता ।
पारिभाषिकमित्युक्तं तयार्थबोधकं पदम् ॥७८॥
वैयाकरणसंकेतितं गुणादिपदं यथा ।
पदं हि वाचकं ज्ञेयं शक्त्या चार्थावबोधकम् ॥७९॥
जात्यादिसंयुतव्यक्तेर्बोधकं हि गवादिकम् ।
तद्बोध्योऽर्थोगवादिर्हि वाच्यो मुख्यार्थ एव सः ॥८०॥
जात्यादियुक्तगोव्यक्तौ शक्तिश्च गोपदस्य हि ।
शक्तिग्रहः पदानां च कोशव्याकरणादितः ॥८१॥
सति मुख्यार्थबाधेऽथ ह्यासन्नस्थितवस्तुनि ।

इस प्रकारकी इच्छा अथवा संकेतको 'शक्ति' कहते हैं । ॥७६॥७७॥

आधुनिक संकेतको 'परिभाषा' कहते हैं । परिभाषा द्वारा अर्थके बोध करनेवाले पदको 'पारिभाषिकपद' कहते हैं ॥७८॥

वैयाकरणोंके द्वारा संकेतित गुण वृद्धि आम्रेडित इत्यादि पद 'परिभाषिक पद' हैं । शक्ति द्वारा अर्थबोध करनेवाले पदको 'वाचक' कहते हैं ॥७९॥

गो इत्यादि पद गोत्वादिजातिविशिष्ट गो इत्यादि व्यक्तियोंके बोधक हैं । गो इत्यादि पदोंके बोध्य गोत्वादि जाति तथा गो आदि व्यक्ति हैं । ये ही गो आदि पदोंके मुख्यार्थ हैं ॥८०॥

गो पदकी शक्ति गोत्वजातिविशिष्ट गोव्यक्तिमें है । कोश व्याकरण आदिसे पदोंकी शक्तिका ज्ञान होता है ॥८१॥

Scanned by CamScanner

कल्प्यतेऽमुख्यवृत्तिश्च विद्विद्भिरौपचारिकी ॥८२॥
गौणी च लक्षणाचेति विभेदात् सा द्विधा मता ।
लक्षणा शक्यसम्बन्धो गौणी तदितरा खलु ॥८३॥
लक्षणा द्विविधा ज्ञेया जहदादिविभेदतः ।
' गङ्गायां घोष ' इत्यादौ प्रवाहबाधतः किल ॥८४॥
तत्सम्बधिनि तीरे हि लक्षणाऽऽश्रीयते बुधैः ।
वाच्यार्थस्यान्वयाभावादत्राद्या परिकीर्त्तिता ॥८५॥

मुख्य अर्थके बाध होने पर विद्वान् लोग मुख्यार्थके समीपस्थ पदार्थमें अमुख्यवृत्तिकी कल्पना करते हैं । वह 'औपचारिकीवृत्ति' कही जाती है ॥८२॥

लक्षणा

गौणी और लक्षणाके भेदसे वह औपचारिकी वृत्ति दो प्रकारकी है । शक्य सम्बन्धको 'लक्षणा' कहते है । लक्षणाभिन्न औपचारिकी वृत्तिको 'गौणी' कहते हैं ॥ ८३ ॥

जहल्लक्षणा और अजहल्लक्षणा के भेदसे लक्षणा दो प्रकारकी है । जिसमें वाच्यार्थका त्याग हो उसे 'जहल्लक्षणा' कहते हैं । 'गङ्गायां घोषः' (गङ्गामें घोष अर्थात् गोष्ठ=गायोंका बाडा है ।) यहाँ पर गङ्गापदका शक्य अर्थ प्रवाह है । परन्तु प्रवाह में घोष नहीं रह सकता है । इस लिये प्रवाहसमीपस्थ तीरमें गङ्गापदकी लक्षणा मानते हैं । इसलिये 'गङ्गामें घोष है' इस वाक्यका अर्थ होता है कि 'गङ्गाके तीर पर घोष है ।' यह जहल्लक्षणा का उदाहरण है । क्योंकि गङ्गा पदके वाच्यार्थ (शक्यार्थ) का त्याग हो जाता है ॥८४॥८५॥

क्षत्रिणो यान्ति चेत्यादौ वाच्यार्थस्यान्वयोऽपि यत् ।
अजहल्लक्षणा तस्माद् द्वितीया बुधसम्मता ॥८६॥
अन्वयानुपपत्तौ हि लक्षणाबीजता मता ।
'सिंहो बालक' इत्यादौ गौणीवृत्तिः समाश्रिता ॥८७॥
विद्वद्भिश्च शब्दस्य प्रवृत्तिर्द्विविधा मता ।

जिसमें शक्यार्थ (वाच्यार्थका) भी बोध हो उसे 'अजहल्लक्षणा कहते हैं । जैसे 'छत्रिणो यान्ति' (छत्तेवाले जाते हैं ।) दो समुदाय हैं । एक छत्ताशून्योंका अन्य छत्तेवालोंका जिसमें कुछके पास छत्ते हैं और बाकी छत्तारहित हैं । छत्तेवाले समुदायके जानेपर प्रयोग किया जाता है कि छत्ते वाले जाते है । यहां पर छत्रीका मुख्य अर्थ है छत्तावाला । परन्तु यहाँ पर यह अर्थ होता है कि प्रथमके समुदायके छत्तेवाले और छतेसे रहित दोनों जाते हैं । यह अर्थ नहीं है कि छतेवाले जाते हैं और उस समुदायके छतेसे रहित लोग स्थित रहते हैं । यहाँ इसलिये छत्रिण पदके मुख्यार्थ छतेवालेके सम्बन्धके भी होनेसे यह अजहल्लक्षणा है । यहाँ पर छत्रीपदका छत्रवाले और छत्ररहित दोनों अर्थ हुआ है ॥८६॥

अन्वयानुपपत्ति अर्थात् सम्बन्धकी अनुपपत्तिको लक्षणाका बीज माना गया है ।'सिंहो माणवकः ' (बालक सिंह है ।) यहाँ पर गौणीवृत्तिसे सिंहशब्दका अर्थ होता है सिंहसदृश शौर्यादिगुणवाला । इसलिये यहाँ पर शक्ति नहीं है और लक्षणा भी नहीं है । किन्तु गौणीवृत्ति है ॥८७॥

शब्दकी प्रवृत्ति

विद्वानोंने शब्दकी प्रवृत्ति दोप्रकारसे मानी है । एक पदरूपसे

Scanned by CamScanner

पदरूपेण चैकाथ द्वितीया वाक्यरूपतः ॥८८॥
पदत्वं तत्र योगेन प्रकृतेः प्रत्ययस्य च ।
ततः पाचकशब्दाद् यत् पचनकर्तृतामतिः ८९॥
विशेषः स पदं तस्मात् विशिष्टविषयं मतम् ।
तत्तत् पदार्थसंसर्गरूपार्थप्रतिपादकम् ॥९०॥
पदराश्यात्मकं वाक्यं विशिष्टविषयं ततः ।
निर्विशेषपरत्वं तत् वाक्यस्य नैव सिध्यति ॥९१॥
भेदविषयकत्वं तदुभयोः स्वीकृतं तथा ।
भेदेनैव मता यस्मात् प्रतीतिधर्मधर्मिणोः ॥९२॥
वाक्यजातं च सर्वं हि वैदिकं लौकिकं तथा ।
भेदविषयकं चाथ विशिष्टविषयं ततः ॥९३॥

दूसरी वाक्य रूपसे ॥८८॥

प्रकृति और प्रत्यक्षके योगसे पदत्व होता है । इसलिये पाचक शब्दसे जो पचनकर्तृत्वबुद्धि होती है वही विशेष है । इसलिये पद विशिष्टविषयक माना गया है । इसलिये तत् तत् पदार्थोंके संसर्ग-रूप अर्थका प्रतिपादक पदसमूहरूप वाक्य भी विशिष्टविषयक ही है । इसलिये वाक्यका निर्विशेषवस्तुविषयकत्व नहीं सिद्ध होता है ॥८९॥९०।९१॥

इसलिये पद और वाक्य दोनोंका भेदविषयकत्व भी माना है । क्योंकि धर्म और धर्मी दोनोंकी अर्थात् विशेष और विशेषयुक्त पदार्थ दोनोंकी प्रतीति भेद रूपसे ही मानी गई है ॥९२॥

इसलिये वैदिक और लौकिक समस्त वाक्यसमूह भेदविषयक

“ जगत्सर्वं शरीरं ते स्थैर्यं ते वसुधातलम् । ”
इति रामायणोक्त्या हि सर्वस्य रामदेहता ॥९४॥
देहवाचकशब्दा हि पर्यवस्यन्ति देहिनि ।
ब्रह्मरुद्रादिशब्दास्तत् पर्यवस्यन्ति राघवे ॥९५॥
इति मानरत्नावल्यां शब्दप्रमाणपरिच्छेदः ॥

और विशिष्टविषयक ही है ॥९३॥

‘ जगत् सर्वं शरीरं ते स्थैर्यं ते वसुधातलम् ’ (वा. रा. यु.) (हे भगवान् श्रीरामजी समस्त जगत् आपका शरीर है और वसुधातल आपका स्थैर्य है ।) इस रामायणकथनसे समस्त जगत् भगवान् श्रीरामका शरीर है ॥९४॥

अहं देवः, अहं मनुष्यः, अहं सुखी तथा अहं दुःखी इत्यादि प्रयोगवशात् शरीरवाचक शब्दोंका शरीरीमें पर्यवसान माना गया है । इसलिये निष्कर्षकशब्दभिन्न ब्रह्म रुद्र इत्यादि समस्त शब्द भगवान् श्रीरामजीमें ही पर्यवसन्न होते हैं । इसलिये ‘ तत् त्वमसि ’ इस-वाक्यके तत्पदार्थपरात्पर ब्रह्म भगवान् श्रीराम और त्वम्पदार्थ त्वच्छ-रीरक ब्रह्म का ऐक्य तथा तत् और त्वम् पदार्थोंका सामानाधिकरण्य भी उपपन्न हो जाता है । इससे ‘तत्त्वमसि’ इस स्थलमें अद्वैतवा-दियोंके द्वारा मानी हुई जहदजहल्लक्षणाका निरास भी हो जाता है । क्योंकि मुख्यार्थमें बाध न होने पर भी लक्षणावृत्ति मानना दार्शनिकों द्वारा अनुचित माना गया है ॥९५॥

इति मयूखे शब्दप्रमाणपरिच्छेदः ॥३॥

Scanned by CamScanner

वैष्णवभाष्यकारश्रीवैष्णवाचार्यनिर्मिता ।
मानरत्नावली भूयात् कण्ठस्था मानदायिनी ॥९६॥

वैष्णवभाष्यकार पण्डितसम्राट् स्वामी श्रीवैष्णवाचार्य वेदान्तपीठाधीश द्वारा निर्मित यह मानरत्नावली कण्ठस्थ होकर मानदायिनी बने ॥

समाप्ता मयूखसहिता मानरत्नावली

आनन्दभाष्यकर्त्तारमानन्दपथदर्शकम् ।
आनन्दनिलयं वन्दे रामानन्दं जगद्गुरुम् ॥

श्रीसीतारामाभ्यां नमः ।
आनन्दभाष्यकार श्रीरामानन्दाचार्याय नमः ।
श्रीटीलाचार्याय नमः । श्रीमङ्गलाचार्याय नमः ।
वेदान्तपीठाधीश पण्डितसम्राट् स्वामिश्रीवैष्णवाचार्य-
वेदान्ततीर्थविरचितो

ब्रह्मसूत्रार्थसंग्रहः

प्राप्यं च प्रापकं नत्वा राघवं ब्रह्मसंज्ञकम्
व्यासबोधायनौ वन्दे सूत्रवृत्तिविधायकौ ॥१॥

पण्डितसम्राट् स्वामिश्रीवैष्णवाचार्य वेदान्ततीर्थविरचित

ब्रह्मसूत्रार्थसार

प्राप्य तथा प्रापक नमौं पूर्णब्रह्म श्रीराम ।
जिनकी भक्ति प्रपत्ति से मिलत मुक्तिका धाम ॥१॥
वृत्तिसूत्रकारक नमौं बोधायन औ व्यास ।
सुन्दर वेदमताब्जका जिनसे हुआ विकास ॥२॥
वन्दौं यतिसम्राट् श्रीजगगुरु रामानन्द ।
वाद तजैं वादी निरखि जासु भाष्य आनन्द ॥३॥
आदि राम औ मध्य श्री यतिपति रामानन्द ।
गुरुमाला गुरुतक भजौं जो नाशै भवफन्द ॥४॥
श्रीगुरुवर पदपद्ममें श्रद्धासे शिर नाय ।
ब्रह्मसूत्रके अर्थका सार कहूँ समुझाय ॥५॥

भाष्यकारं प्रणम्याथ रामानन्दं गुरुं तथा
कुर्वे सारार्थबोधाय ब्रह्मसूत्रार्थसंग्रहम् ॥२॥
कृत्स्ना हि ब्रह्ममीमांसा वादरायणनिर्मिता ।
प्राप्यं च प्रापकं ब्रह्म तत्रोक्तं राघवाभिधम् ॥३॥
तस्यां षोडशभिः पादैः सहाध्यायचतुष्टयम् ।
द्विकद्वयं तथा चास्ति श्रौतसिद्धान्तबोधकम् ॥४॥
आद्यद्विकेन तत्राथ जगज्जन्मादिहेतुता ।
उपायोपेयते प्रोक्ताः सिद्धस्य ब्रह्मणस्तथा ॥५॥

मुक्तिदशामें जीवोंके प्राप्यस्वरूप तथा जीवोंको स्वप्राप्ति करानेवाले ब्रह्मसंज्ञक भगवान् श्रीराघवेन्द्रको नमस्कार करके सूत्रकार भगवान् श्रीव्यासजी तथा वृत्तिकार भगवान्श्री बोधायनका मैं वन्दन करता हूँ॥१॥

आनन्दभाष्यकार भगवान् श्रीरामानन्दाचार्यजी यतिराज तथा श्रीगुरुदेवको प्रणाम करके सार अर्थके बोधके लिये मैं 'ब्रह्मसूत्रार्थसंग्रह' को बनाता हूँ ॥२॥

जिसे ब्रह्मसूत्र ब्रह्मदर्शन वेदान्तदर्शन तथा उत्तरमीमांसा कहते हैं। वह सम्पूर्ण 'ब्रह्ममीमांसा' भगवान् श्रीवादरायण (व्यासजी) के द्वारा बनाई गई है। उसमें प्राप्य तथा प्रापक श्रीराघवेन्द्रनामक ब्रह्मतत्त्वका वर्णन किया गया है ॥३॥

उसमें वैदिकसिद्धान्तके बोधक सोलह पादोंके साथ चार अध्याय तथा दो द्विक हैं। एक द्विकमें दो अध्याय होते हैं और प्रति अध्याय में चारपाद हैं ॥४॥

प्रथम और द्वितीय अध्यायसे बने हुए प्रथम द्विकसे सिद्धब्रह्म भगवान् श्रीरामजीकी जगत्के सृष्टि स्थिति तथा लयकी हेतुता उपायता

अन्तिमेन द्विकेनाथ ब्रह्मणो जानकीपतेः ।
सम्प्राप्तेः साधनं चाथ तत्फलं समुदीरितम् ॥६॥
तत्र समन्वयाख्येन चाध्यायेनादिमेन हि ।
जगद्धेतुश्रुतीनां सम्प्रोक्तो ब्रह्मसमन्वयः ॥७॥
द्वितीयेनाविरोधेन विरोधो ब्रह्मणि श्रुतेः ।
परिहृतोऽविरोधश्च सांख्यानां प्रकृतौ तथा ॥८॥
साधनाख्यतृतीयेनाध्यायेनाथ समीरितम् ।
ब्रह्मणो रामचन्द्रस्य सम्प्राप्तेः साधनं परम् । ९

और उपेयता कही गई है ॥ ५ ॥

तृतीय तथा चतुर्थ अध्यायसे बने हुये द्वितीय द्विकसे परिपूर्णब्रह्म भगवान् श्रीजानकीनाथजीकी सम्यक् प्राप्तिका साधन (उपासना) तथा फल (मुक्ति) कहा गया है ॥६॥

उन चारों अध्यायोंमेंसे समन्वयनामक प्रथम अध्यायसे जगत्कारणविषयक (जगत्के कारणवाचक) श्रुतियोंका परिपूर्ण ब्रह्म भगवान् श्रीजानकीनाथजीमें समन्वय (सम्बन्ध) कहा गया है ॥७॥

अविरोधनामक द्वितीय अध्यायसे आपाततः प्रतीत होते हुए ब्रह्ममें श्रुतिके विरोधका तथा सांख्यमतवालों द्वारा माने हुए प्रकृतिमें श्रुतिके अविरोधका परिहार किया गया है कि जगत्कारण प्रकृति नहीं है किन्तु ब्रह्म है ॥ ८ ॥

साधननामक तृतीय अध्यायसे परिपूर्ण ब्रह्म भगवान् श्रीरामचन्द्रजीकी सम्यक् प्राप्तिका उत्कृष्ट साधन कहा गया है ॥९॥

Scanned by CamScanner

फलाख्येन चतुर्थेन चाध्यायेन निरूपिता ।
रामस्य ब्रह्मणः प्राप्तिर्नित्या सायुज्यनामिका ॥१०॥
अस्पष्टतरजीवादिलिङ्गकवचसां श्रुतेः ।
विचारो विहितश्चाद्याध्यायस्यादिमपादतः ॥११॥
जीवाद्यस्फुटलिङ्गानां श्रुतीनां वचसां तथा ।
द्वितीयेनाथ पादेन निर्णयो विहितः खलु ॥१२॥
स्पष्टजीवादिलिङ्गानां वचसां च श्रुतेः पुनः ।
ब्रह्मगोचरता प्रोक्ता पादतश्च तृतीयतः ॥१३॥
स्पष्टतरप्रधानादिलिङ्गकवचसां श्रुतेः ।
प्रोक्तं ब्रह्मपरत्वं हि पादतश्च तुरीयतः ॥१४॥

फलनामक चतुर्थ अध्यायसे अविनाशिनी सायुज्यमुक्तिनामक परब्रह्म भगवान् श्रीरामजीकी प्राप्तिका वर्णन किया गया है ॥१०॥

अत्यन्त अस्पष्ट जीवादिलिङ्गक श्रुतिवचनोंका विचार प्रथमाध्यायके प्रथमपादद्वारा किया गया है कि जीवादि जगत्के कारण नहीं हैं किन्तु ब्रह्महो जगत्का कारण है ॥ ११ ॥

प्रथमाध्यायके द्वितीयपादसे जीवादिके अस्पष्टलिङ्गक श्रुतिवचनोंका विचार किया गया है ॥ १२ ॥

'स्पष्ट जीवादिलिङ्गक श्रुतिवचन ब्रह्मविषयक हैं ।' इस बातका निर्णय प्रथमाध्यायके तृतीयपादसे किया गया है ॥ १३ ॥

प्रथमाध्यायके चतुर्थपादसे कहा गया है कि अत्यन्त स्पष्ट प्रधानादिलिङ्गक श्रुतिवचन ब्रह्मपरक हैं प्रधानादिपरक नहीं हैं ॥१४॥

दूरीकृतो द्वितीयाध्यायस्य प्रथमपादतः ।
सांख्यस्मृतिविरोधोऽथ श्रौतस्मृतिविरोधतः ॥१५॥
सांख्यादिस्मृतितर्कांश्च श्रौततर्कैर्निरस्य हि ।
स्थापितो वैष्णवो धर्मः स्वीयो द्वितीयपादतः ॥१६॥
तृतीयस्मिंस्तु पादे हि वियदादेरनित्यताम् ।
आत्मनो नित्यतां चोक्त्वा विहितः श्रुतिसमन्वयः ॥१७॥
प्राणानामिन्द्रियाणां हि पादतश्च चतुर्थतः ।
अणुत्वं चाथ भिन्नत्वं कार्यत्वं च निरूपितम् ॥१८॥
अध्यायस्य तृतीयस्य चादिमपादतः कृतम् ।
ब्रह्मोपासनवाञ्छार्थं जीवदोषनिरूपणम् ॥१९॥

द्वितीयाध्यायके प्रथमपादद्वारा मन्वादि वैदिकस्मृतियोंके विरोधसे साँख्यस्मृतिके विरोधको हटाया गया है ॥ १५ ॥

द्वितीयाध्यायके द्वितीयपादसे भगवान् श्रीवेदव्यासजीने वैदिक-तर्कोंसे अर्थात् वेदानुसारीतर्कोंसे साँख्यादिस्मृतियोंके तर्कोंका खण्डन करके अपने वैष्णवधर्मको स्थापित किया है ॥१६॥

द्वितीयाध्यायके तृतीयपादमें तो आकाशादिकी अनित्यता और आत्माकी नित्यताको कहकर श्रुतियोंका समन्वय किया है ॥१७॥

प्राणशब्दवाच्य इन्द्रियोंके अणुत्व भिन्नत्व तथा कार्यत्वका निरूपण द्वितीयाध्यायके चतुर्थपादद्वारा किया गया है ॥१८॥

ब्रह्मोपासनाकी इच्छाकी सिद्धिके लिये तृतीयाध्यायके प्रथमपादसे जीवोंके दोषोंका निरूपण किया गया है ॥१९॥

Scanned by CamScanner

द्वितीयेनाथ पादेन ब्रह्मणो जानकीपतेः ।
उक्ता च परता मुक्तेर्दातृतोभयलिङ्गता ॥२०॥
अध्यास्य तृतीस्य तृतीयपादतः खलु ।
राघवोपासनस्याथ भेदाश्च विनिरूपिताः ॥२१॥
पादेनाथ चतुर्थेन वर्णाश्रमीयधर्मयोः ।
इतीकर्त्तव्यतावत्वं विद्यायाः परिकीर्तितम् ॥२२॥
अध्यायस्य चतुर्थस्य पादेन प्रथमेन हि ।
विद्यायाः सुविधी रूपं माहात्म्यं चापि वर्णितम् ॥२३॥
द्वितीयेनाथ पादेन ब्रह्मोपासकस्य हि ।
उत्क्रान्तेश्च प्रकारोऽथ सुखबोधाय वर्णितः ॥२४॥

तृतीय अध्यायके द्वितीयपादसे ब्रह्मपदवाच्य भगवान् श्रीजानकीनाथजी के परत्व मुक्तिदातृत्व तथा कल्याणगुणविशिष्टत्वका कथन किया गया है ॥२०॥

तृतीयाध्यायके तृतीयपादद्वारा भगवान् श्रीरामजीकी उपासनाके भेदोंका निरूपण किया गया है ॥२१॥

'उपासना (विद्या) की इतिकर्त्तव्यता वर्णों तथा आश्रमोंके धर्म हैं ।' इसका कथन तृतीयाध्यायके चतुर्थपादसे किया गया है ॥२२॥

चतुर्थाध्यायके प्रथमपादसे उपसनाका स्वरूप उपासनाकी विधि तथा उपासनाका माहात्म्य वर्णित किये गये हैं ॥ २३ ॥

चतुर्थाध्यायके द्वितीयपादसे सुखसे विदित होनेके लिये ब्रह्मोपासककी उत्क्रान्तिके (देहसेनिकलनेके) प्रकारका वर्णन किया गया है ॥२४॥

तृतीयेनाथ पादेन त्वर्चिरादिगतिस्तथा ।
अर्चिरादिपथेनैव ब्रह्मप्राप्तिर्निरूपिता ॥२५॥
चतुर्थेनाथ पादेन ब्रह्मलोकं गतस्य हि ।
वर्णिता मोक्षसम्प्राप्तिः पुनरावृत्तिवर्जिता ॥२६॥
वैष्णवभाष्यकारश्रीवैष्णवाचार्यनिर्मितः ।
ब्रह्मविद्याप्रदाता स्याद् ब्रह्मसूत्रार्थसंग्रहः ॥२७॥

–:०:*:*:०:–

अर्चिरादिमार्गका वर्णन तथा 'अर्चिरादिमार्गसे ब्रह्मप्राप्ति (मुक्ति) होती है ।' इस बातका वर्णन चतुर्थाध्यायके तृतीयपादसे किया गया है ॥ २५ ॥

"जीवकी पुनरावृत्तिरहित मोक्षप्राप्ति ब्रह्मलोकमें जानेपर ही होती है। इस लोकमें नहीं ।" इसबातका विचार चतुर्थाध्यायके चतुर्थपादमें किया गया है ॥२६॥

वैष्णवभाष्यकार पण्डितसम्राट् स्वामिश्रीवैष्णवाचार्य वेदान्तपीठाधीशद्वारा बनाया हुआ यह ब्रह्मसूत्रार्थसंग्रह ब्रह्मविद्याको देनेवाला हो ॥२७॥

वैष्णवभाष्यकारश्रीवैष्णवाचार्यनिर्मितः ।
ब्रह्मसूत्रार्थसारोऽयं भूयात् सारावबुद्धये ॥

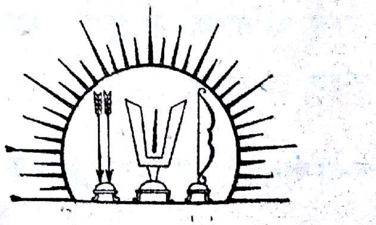

Scanned by CamScanner

शुद्धिपत्रम्

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३	९	लक्षणत्तया	लक्षणसत्तया
४	१८	स्मृत ।	स्मृता
५	७	होता है	होते हैं ।
८	४	सविकल्पविकल्पत्व	सविकल्पाविकल्पत्व
९	२०	त्वाच	त्वाचघ्राणज
१२	२	ह्यन्तभूता	ह्यन्तर्भूता
,,	३	तद्ग्रहो	तद्ग्रहो
,,	८	आत्माख्याति	आत्मख्याति
१९	४	प्रत्थक्ष	प्रत्यक्ष
२०	१६	अमेदग्रहके	भेदग्रहके
२२	५	रजतरूपतः	रौप्यरूपतः
५०	२	चायंद्वितीय	चायमन्त्य
,,	३	समुदीरितम्	समीरितम्
८१	१०	प्रमाणरहित्व	प्रमाणरहितत्व
८२	७	स्मृत्वा स	स्मृत्वा तु
८७	७	तस्या लौकिके	तस्यालौकिके
१००	१०	वक्तृभावा	वक्त्रभावा
१०६	२२	प्रमाण है ।	प्रमाणत्व है ।
१०७	१९	कपिलर्षि	कपित्नर्षि

सूचना :—इनसे अतिरिक्त भी कुछ अशुद्ध शब्द होंगे उन्हें शुद्ध कर पढें । वहिन शब्द को वह्नि पढें ।

वेदान्तपीठाधीश स्वामि श्रीवैष्णवाचार्यप्रणीताः प्रबन्धाः

१.	प्रश्नोपनिषदो वैष्णवभाष्यं भाषाभाष्यं च	१–००
२.	मयूखसहिता मानरत्नावली सटीको ब्रह्मसूत्रार्थसंग्रहश्च	१–५०
३.	सटीकं सिद्धान्तपञ्चकं मूलभक्तमालसहितम्	०–७५
४.	अर्थदीपिकासहितमर्थपञ्चकम्	यन्त्रस्थ
५.	श्रौतसिद्धान्तचालीसा हिन्दी अथवा गुजराती टीका	०–२५
६.	श्रीरघुनाथचालीसा	अमुद्रित
७.	श्रीरामनामचालीसा	"
८.	श्रीबोधायनचालीसा	"
९.	श्रीयतीन्द्रचालीसा	"
१०.	छन्दःप्रदीपिका ज्योतिःसहिता	"
११.	शिक्षाकलानिधिः	"
१२.	शिक्षाशतकमथवा प्रश्नोत्तरशतकम्	"
१३.	स्तोत्रकुसुमाञ्जलिः १२५ स्तोत्र	"
१४.	वैष्णवालङ्कारभाष्यम्	यन्त्रस्थ
१५.	अधिकरणरत्नमाला प्रकाशसहिता	"
१६.	प्रमेयपरिशोधिनी सिद्धान्तसिद्धिसहिता	"
१७.	श्रीबोधायनकथामृतम् (दोहा चौपाई)	"
१८.	श्रीवैष्णवशिक्षामृत	"

पण्डितसम्राट् स्वामी श्रीवैष्णवाचार्य

ऋणदेवडी राममन्दिर

शारंगपुर दर्वाजा बाहर

अहमदाबाद–२

Scanned by CamScanner